आधुनिक
हिन्दी नाटक-कला

(६ संक्षिप्त नाटकों सहित)

लेखक—

वेदव्यास एम० ए०, एल० एल० बी०

लाहौर।

———

द्वितीय संस्करण } अक्तूबर १९३७ { सजिल्द २।।)

प्रकाशक :—

वेदव्यास एण्ड कम्पनी

हस्पताल रोड, लाहौर ।

मुद्रक :—

लाला रामभेजा मल कपूर

मालिक लाहौर आर्ट प्रैस

१६, अनारकली, लाहौर ।

नाटक-साहित्य

—o—

भौतिक विज्ञान की दृष्टि से आज का मनुष्य समाज प्राचीन काल के मनुष्य समाज से निस्सन्देह बहुत अधिक उन्नत हो गया है। विज्ञान के नए आविष्कारों ने मनुष्य की शक्ति को हज़ारों गुना बढ़ा दिया है। प्रकृति की अनेक महान् शक्तियां इस समय तक मनुष्य के नियन्त्रण में आ गई हैं और उनकी बदौलत संसार की कायापलट हो गई है। परन्तु विचारों के क्षेत्र में हम इस युग के मनुष्य यह दावा नहीं कर सकते कि हम लोग अपने पूर्वजों को बहुत पीछे छोड़ आये हैं। दर्शन साहित्य, कविता आदि के क्षेत्र में मनुष्य-समाज की उन्नति बहुत धीमी रफ़्तार से हो रही है। छापेख़ाने की ईजाद ने मनुष्य-समाज के लिये पढ़ने और लिखने को आवश्यक बना दिया है। संसार भर के छापेख़ानों में प्रतिदिन लाखों फ़ार्म नया-नया 'साहित्य' छपता है। लिखने वाले भी अब हज़ारों-लाखों की तादाद में हैं। परन्तु फिर भी यह निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि दिमाग की सहायता से कल्पना की ऊँची-ऊँची उड़ानें लेने में और पारमार्थिक सत्य के अन्वेषण में मानव-समाज अभी तक कोई क्रान्ति नहीं कर

सका। वैदिक-काल के ऋषियों ने दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों की जो विवेचना की थी, यह कहना बड़ा कठिन है कि आज के दार्शनिक या अध्यत्मवादी उस से आगे भी बढ़े हैं। यही बात कविता के विषय में भी कही जा सकती है। वाल्मीकि, व्यास, होमर, कालिदास, भवभूति और शेक्सपीयर से वर्तमान युग के कवि बाज़ी ले गये हों—यह नहीं कहा जा सकता। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि वर्तमान युग का नाटक साहित्य बहुत अधिक विस्तृत हो जाने पर भी, वह अपनी श्रेष्ठता और कल्पना की उड़ान की दृष्टि से प्राचीन-काल के नाटक साहित्य से बहुत आगे नहीं बढ़ गया है।

भारतवर्ष में नाटक कला बहुत प्राचीन है। यहां तक कि वेदों के यमयमी और द्यूत सूक्तों में नाटक-कला के बीज पाये जाते हैं। हिन्दू शासन के दिनों में, अर्थात् ईसा की तीसरी सदी से १२वीं सदी तक संस्कृत काव्य ने बहुत उन्नति की और उन दिनों बहुत श्रेष्ठ कोटि के नाटक लिखे गये। संस्कृत के इन नाटकों में अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तर रामचरित्र, कुन्द-माला, मृच्छकटिक, वेणीसंहार, मुद्राराक्षस, हनुमन्नाटक आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। संस्कृत के ये नाटक, संसार के किसी भी देश के नाटक साहित्य का मुकाबला बड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं।

संस्कृत नाटकों में किसी रस का परिपाक विशेष तौर पर करने का प्रयत्न किया जाता था। आठ रस माने जाते थे। शृङ्गार, वीर, करुणा, रौद्र, हास्य, भयानक, बीभत्स और

अद्भुत। वास्तव में स्वभावतः प्रत्येक नाटक, उपन्यास या कहानी में इन आठों रसों में से एक रस का परिपाक विशेष रूप से होता ही है। परन्तु संस्कृत नाटकों की सर्वप्रियता बहुत बढ़ जाने पर नाटकों के सम्बन्ध में शीघ्र ही बहुत से अन्य भी स्थिर नियम बना लिये गये और साधारण प्रतिभा के लोग उन्हीं नियमों के आधार पर नाटक रचना करने लगे। इस में सन्देह नहीं कि नाटक का नाटकत्व रखने के लिये ही कुछ नियमों का अनुसरण करना नितान्त आवश्यक है। परन्तु संस्कृत के साहित्यिक-नियमों का निर्धारण करने वाले वैयाकरणी ढंग के पण्डितों ने अपने ग्रन्थों में नाटकों के सम्बन्ध में इतने विस्तार से नियम बना दिये हैं कि उन के आधार पर ही यदि नाटक रचना करनी हो, तो लेखक को अपनी प्राकृतिक प्रतिभा ताक पर रख देनी पड़ेगी। इन पण्डितों ने अपने से पहले के लिखे हुए कतिपय प्रसिद्ध और लोकप्रिय नाटकों के आधार पर ही नाटक सम्बन्धी 'कठोर' नियमों की व्यवस्था की थी। किस रस के बाद कौन-सा रस और किस परिमाण में आना चाहिये नाटक में कुल कितने और किस-किस ढङ्ग के पात्र रखने चाहियें, नाटक का कथानक किस ढङ्ग का होना चाहिए—इन सब बातों के सम्बन्ध में भी ये साहित्य के वैयाकरणी लेखक को कोई स्वाधीनता नहीं देते। इन नियमों के आधार पर अनेक लोगों ने नाटक लिखने का प्रयत्न भी किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी।

वास्तव में नाटक लिखना एक असाधारण प्रतिभा का

काम है। कहानी, उपन्यास, पद्य-रचना और निबन्ध इन सब की अपेक्षा नाटक को श्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। नाटक की यह श्रेष्ठता किस आधार पर है, इस की विवेचना हम यथा-स्थान करेंगे, यहाँ हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि नाटक लिखने में वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जिस में असाधारण प्रतिभा हो। साहित्य दर्पण आदि के नियम नाटक के शरीर पर वेश-भूषा का काम भले ही दे दें, परन्तु नाटक में प्राण का प्रतिष्ठान केवल मनुष्य की प्रतिभा ही कर सकती है। इस बात को यदि एक ही वाक्य में कहना हो तो हमें कहना चाहिये कि लेखक की प्रतिभा नाटक की आत्मा है, कथानक (प्लाट) उस का शरीर है और साहित्यिकों के बनाए नियम उसके आभूषण हैं।

प्राचीन काल के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ नाटककारों ने भी कुछ नियमों का पालन बिना अपवाद के किया है। संस्कृत के नाटकों में 'सूत्रधार' इसी प्रकार का पात्र है। हमारी समझ में इस का कारण यह है कि उस समय के अधिकांश नाटक राजाओं के सामने खेलने के लिये ही तैयार किये जाते थे; उस समय नाटककार तथा कथानक का परिचय देने के लिये रंग-मंच पर सब से पूर्व सूत्रधार और नटी का ही अवतरण किया जाता था। ये नाटक उस समय सर्व-साधारण प्रजा की सम्पत्ति नहीं थे; धनियों, विद्वानों तथा राजाओं में ही इन का प्रचार था। यह एक तथ्य है कि धनियों, विद्वानों तथा राजाओं की रुचि और दृष्टिकोण में बहुत धीरे-धीरे परिवर्तन होता है; ये लोग पुरानी प्रथाओं का ध्यान बहुत अधिक रखते हैं,

इसी कारण प्राचीन नाटकों की शैली में कोई विशेष परिवर्तन शीघ्रता से नहीं आया।

जब से, छापेखानों की ईजाद के कारण, साहित्य सर्व-साधारण की सम्पत्ति बन गया, तब से जनता की रुचि के अनुसार नाटकों की शैली में भी परिवर्तन आने लगा और नाटक लिखने के सम्पूर्ण प्राचीन नियम क्रमशः अवज्ञा की दृष्टि से देखे जाने लगे। आज इस बीसवीं सदी में यह स्थिति आ गई है, कि नाटक लिखने के सम्बन्ध में कोई भी सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं रहे।

आज भी नाटक साहित्य के नियमों पर विचार करने वाले लोगों का अभाव नहीं है। इस विषय पर अभी तक काफ़ी साहित्य लिखा जाता है। संसार के सम्पूर्ण विश्वविद्यालयों में जो सैंकड़ों विद्वान साहित्य के उपाध्याय पद पर नियुक्त हैं, उन में से ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिन में कोई बहुत ऊँचे दर्जे की मौलिक और सर्वथा नवीन साहित्यिक वस्तु लिखने की क्षमता हो। परन्तु साथ ही वे लोग विद्वान् हैं, उनका अध्ययन भी बहुत विस्तृत है। विश्वविद्यालयों से उन्हें इसी बात के लिये भारी वेतन मिलता है कि वे प्रति दिन बढ़ रहे साहित्य की विवेचना, समीक्षा, वर्गीकरण और समालोचना करें। इधर वर्तमान युग के पाठक, सर्व साधारण जनता के लाखों-करोड़ों पढ़े-लिखे आदमी, साहित्यिक नियमों को एक कौड़ी की कीमत का भी नहीं समझते। उन्हें पढ़ने को कुछ ऐसी चीज़ चाहिये, जिस में तड़प हो, ज़िन्दगी हो, ताज़ापन हो और कुछ नई बात

हो। ऐसी चीज़ साहित्य-समीक्षकों की निगाह में चाहे किसी भी मूल्य की न हो, जनता की दृष्टि में बहुत सम्मान प्राप्त कर लेती है। नतीजा यह होता है कि साहित्य-समीक्षकों को भी शीघ्र ही अपना दृष्टि-कोण बदल लेना पड़ता है और उन्हें अपने बनाये नियमों और साहित्य की श्रेणियों में इस नई कृति को भी जगह देनी पड़ती है। इस तरह से वर्तमान-साहित्य-समीक्षकों का कार्य अब एक तरह से सिर्फ़ हिसाब-किताब करने (स्टाक टेकिंग) का ही रह गया है।

इन सब बातों को लिखने से हमारा अभिप्राय सिर्फ़ इतना ही है कि आधुनिक हिन्दी-नाटक-साहित्य के सम्बन्ध में कुछ भी लिखते हुए हमें नाटक-कला के नियमों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे लिए यहां इतना ही निर्देश कर देना काफ़ी होगा कि नाटक के निर्माण में जिन वस्तुओं को हमने नाटक की आत्मा शरीर या शृङ्गार कहा था, उनकी वस्तु-स्थिति क्या है।

इस जगह कहानी, उपन्यास और नाटक के भेद का वर्णन आवश्यक है। कहानी किसी एक घटना या भाव को लेकर लिखी जाती है। उपन्यास में अनेक घटनाएं, अनेक भाव विस्तार के साथ अंकित किये जाते हैं। यदि यह भी कहें तो कुछ अनुचित न होगा कि कहानी मालती की इकहरी लता है और उपन्यास कदम्ब का घना और गुथीला पेड़ है। नाटक इन दोनों से भिन्न है। नाटक का नाटकत्व कथानक या भावों के चित्रण में नहीं, उनके व्यक्त करने के ढंग में है। किसी

कहानी या उपन्यास को इस ढंग से पेश किया जाय, जिस से वह, वर्तमान-काल का आश्रय लेकर, कल्पना की आँखों के सामने प्रत्यक्ष चित्र के रूप में, आती चली जाय। यह स्पष्ट है कि उसे यदि व्यावहारिक रूप में खेलने का प्रयत्न किया जायगा तो वह पूर्णतया दृश्यरूप में, अभी-अभी आँखों के सामने हो रही घटना के समान, दर्शकों के सन्मुख आता जायगा।

धीरे धीरे दृश्य नाटक साहित्य के भी पुनः स्वयं ही दो रूप हो गए हैं। दृश्य और श्रव्य। दृश्यरूप वह है, जिसे अभिनय के रूप में रंगमंच पर आसानी के साथ खेला जा सके। श्रव्य रूप का दूसरा नाम "पाठ्य" हो जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि जिस नाटक को पढ़ते हुए ही पाठक के सन्मुख कथानक या भाव का चित्र खिंचता चला जाय। कुछ नाटक दृश्य और श्रव्य दोनों होते हैं। यानी उन्हें पढ़ने में भी बड़ा रस आता है और अभिनय में भी वे सफलता के साथ खेले जा सकते हैं। ऐसे नाटकों का लिखना विशेष प्रतिभा का काम है। प्रायः नाटक या तो खेलने में अच्छे होते हैं, या पढ़ने में। हिन्दी में इस ढंग के नाटकों का भेद आगे चल कर दिखाया जायगा।

हमने कहा था कि नाटक का प्राण उसके लेखक की प्रतिभा है। इस सम्बन्ध में कुछ विस्तार से लिखने की आवश्यकता है। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य में सभी प्रकार के गुण और भाव हर समय अन्तर्हित रहते हैं। परिस्थितियों के अनुसार एक

मनुष्य कभी क्रोध में आ जाता है, कभी उस में करुणा उमड़ पड़ती है और कभी वह प्रेम रस में तल्लीन हो जाता है। कोई-कोई ऐसा मनहूस समय भी होता है जब मनुष्य का अन्तःकरण शान्त समुद्र के समान निश्चल हो जाता है, उस में किसी भी भाव की तरंगें नहीं उठ रही होतीं। नाटककार की कला इस में है कि वह मानव हृदय के इन प्राकृतिक भावों का यथेष्ट प्रयोग कर सके। दूसरे शब्दों में वह अपने पाठक को अपना वशवर्ती बना ले, उस पर जादू कर दे। जहां वह रुलाना चाहे, पाठक रो उठे, जहाँ पाठक को वह गम्भीर बन जाने की आज्ञा दे, वहां पाठक गम्भीर बन जाय और जहां वह पाठक को हंसाने का प्रयत्न करे वहां पाठक का मुख, अकेले में भी, खिलखिला उठे, उसके होठों के दोनों कोर हंसने के लिये तैयार हो जायं। इसी का नाम प्रतिभा है। साहित्य की प्रत्येक चीज़ लिखते हुए प्रतिभा की आवश्यकता होती है, परन्तु नाटक में इसकी सब से अधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि यहां पाठक को भावों का चित्र उतार कर दिखाना होता है। नाटककार को एक ओर अपने पात्रों पर काबू रखना पड़ता है और दूसरी ओर उसे अपने पाठकों और दर्शकों को अपना वशवर्ती बनाना होता है, इसी से अच्छा नाटक लिखना भारी प्रतिभा का काम समझा जाता है।

कथानक नाटक का शरीर है। प्राचीनकाल में लोग ऐतिहासिक कथानक लेकर उसे अपनी कल्पना से तोड़ मोड़

कर अपने नाटक के लिए अनुकूल बना लेते थे। परन्तु अब प्राय: कथानक भी मौलिक निर्माण किए जाते हैं। ऐतिहासिक कथानक के आधार पर नाटक का निर्माण इस लिए आसान हो जाता है कि पाठकों के दिल में उस ऐतिहासिक व्यक्ति के लिए पहले ही से एक स्थान बना होता है, इस सम्बन्ध में नाटककार को नई सृष्टि या नया प्रयत्न नहीं करना पड़ता। परन्तु इसी बात के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि मौलिक कथानकों वाले नाटक अवश्य ही ऐतिहासिक कथानक के नाटकों से अधिक श्रेष्ठ होते हैं।

नाटक के आभूषणों के सम्बन्ध में दो-एक बातें कह कर हम आधुनिक हिन्दी नाटक-कला की ओर आयेंगे। जिन नाटकों का अभिनय सम्भव न हो, उन्हें सफल नाटक नहीं कहा जा सकता। जिन नाटकों का अभिनय करना आसान न हो, उन्हें भी पूर्णांश में सफल नहीं कहा जा सकता। आज-कल फ़ोटोग्राफ़ी के विज्ञान ने जो उन्नति कर ली है, उस की बदौलत बहुत-सी ऐसी बातों का फ़ोटो आसानी से लिया जा सकता है, जो बातें क्रिया में अभी तक नहीं हो सकतीं। उदाहरणार्थ एक आदमी का पहाड़ से कूद पड़ना, किसी का जंगली जानवरों से घिर कर बच आना अथवा स्वयं अपना सिर काट कर अपने हाथों में पकड़ लेना आदि। फिर भी अभी तक रंग-मंच पर जिन बातों का नाटक सम्भव न हो, उन का दृश्य नाटक में प्रवेश सराहनीय नहीं समझा जाता। इसी तरह बात-चीत में लम्बे-लम्बे लेक्चर झाड़ना भी एक

बड़ा दोष है। नाटककार के लिये आवश्यक होता है कि वह अपने काव्य को रंगमंच पर क्रियात्मक रूप में दिखा सके। इसके विना उसे सफल नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान युग में, सिनेमा (छायाचित्र) की कला बड़ी शीघ्रता से उन्नति कर रही है। पिछले दस वर्षों में रंग-मंच का रूप ही बदल गया है नाटकों का स्थान अब सिनेमा ने ले लिया है। इस परिवर्तन ने नाटक-साहित्य पर भी भारी प्रभाव डाला है। अपनी परिभाषा में जिस चीज़ को हमने नाटक की वेशभूषा कहा था वह इन दस वर्षों में बिल्कुल बदल गई है। भारतवर्ष में भी यह प्रक्रिया बड़ी तेज़ी के साथ हो रही है। परन्तु यह भी एक तथ्य है कि अभी तक सिनेमा के लिये लिखे जाने वाले नाटकों ने ऊँचे और स्थिर साहित्य में क्रान्ति नहीं की। आजकल सिनेमा में जो नाटक दिखाये जाते हैं वे ऊँचे दर्जे के श्रेष्ठ साहित्यिक नाटकों का सरल और संक्षिप्त रूपान्तर होते हैं। बहुत से नाटक सिनेमा बनाने के उद्देश्य से भी लिखे जाते हैं; सिनेमा हाल में जनता उन्हें बहुत पसन्द भी करती है, परन्तु इस तरह के अधिकांश नाटक अभी तक स्थिर नाटक-साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं डाल सके हैं।

भारतवर्ष के आधुनिक नाटककारों में हमारी राय में द्विजेन्द्रलाल राय सर्वश्रेष्ठ हैं। राय महोदय ने करीब दो दर्जन नाटक लिखे हैं। इन में से कुछ का कथानक ऐतिहासिक है, कुछ का पौराणिक और कुछ का कल्पनात्मक। ऐतिहासिक नाटक लिखने में उन्हें असाधारण सफलता मिली है। उन के

पौराणिक और कल्पनात्मक नाटक भी बहुत ऊँचे दर्जे के हैं। ये नाटक स्टेज पर भी बड़ी सफलता के साथ खेले गये हैं। तथापि उन्हें हमारी राय में पाठ्य या श्रव्य नाटकों की श्रेणी में ही रखना चाहिये। द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने नाटकों में प्राचीन परिभाषाओं का आश्रय नहीं लिया। फिर भी वे उग्र क्रान्तिकारी नहीं बने। भारतीय भाषाओं में आजकल जो श्रेष्ठ गिने जाते हैं, और जिन्हें जनता चाव के साथ पढ़ती है, वे प्रायः राय महोदय की शैली पर ही लिखे गये हैं। श्री द्विजेन्द्र-लाल राय के नाटक भाव प्रधान हैं; उन में रसों का परिपाक पूरी तरह पर हुआ है। एक विद्वान् समालोचक के शब्दों में—"राय महोदय के लिये सब कुछ बड़ा है—छोटी चीज़ के लिये वहां जगह नहीं है। उन के लिये दुनियां में कोई मध्यम दर्जा है ही नहीं। उन के पास अकबर है, चन्द्रगुप्त है, राणा प्रताप है—पर बाज़ार में बैठा हुआ दूकानदार नहीं है २५) रु० मासिक पाने वाला क्लार्क नहीं है। उन के पास पागल हैं, ऋषि हैं, शेर हैं, गीदड़ हैं, पर साधारण दिमाग़ और शक्ति वाले मनुष्य नहीं हैं।"

वास्तव में श्री द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में जो पात्र साधारण स्थिति के भी हैं, उन में भी असामान्य असाधारणता है। उदाहरण के लिये हम उन के "उस पार" नाटक में से 'भगवान दास', 'भोलानाथ' और 'कालीचरण' को पेश कर सकते हैं। राय महोदय की कला की श्रेष्ठता इसी बात में है कि वे सब कुछ बहुत स्पष्ट और बड़ा करके पाठक की आंखों के

सामने ले आते हैं। जैसे आप किसी चीज़ को खुर्दबीन से देख रहे हों।

वर्तमान भारतीय नाटक साहित्य में बंगाल का स्थान बहुत उच्च है। कविवर रवीन्द्रनाथ और श्री गिरीश चन्द्र के नाटक भी सचमुच बहुत ऊँचे दर्जे के हैं। द्विजेन्द्रलाल के समान रवीन्द्रनाथ के भी अधिकांश नाटकों का अनुवाद हिन्दी में हो चुका है और इन दोनों की कृतियां एक तरह से हिन्दी-साहित्य की अपनी चीज़ बन गई हैं। इन दोनों महान् नाटक-कारों के बहुत से नाटकों का अनुवाद श्री रूपनारायण पाण्डेय ने किया है। पाण्डेय जी का अनुवाद इतना सुन्दर बन पड़ा है कि उसे पढ़ने में मौलिक से कम आनन्द नहीं आता। हिन्दी जगत् में राय और ठाकुर को सर्वप्रिय बनाने का काफ़ी श्रेय पाण्डेय जी को ही मिलना चाहिये।

नाटक-साहित्य की दृष्टि से हिन्दी को हम भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं से पिछड़ा हुआ नहीं कह सकते। आधुनिक हिन्दी के प्रथम प्रतिभाशाली कवि हरिश्चन्द्र के नाटकों का हिन्दी नाटक-साहित्य में सब से प्रमुख स्थान है। उन्होंने कुल मिलाकर १४ नाटक लिखे। इन में ७ मौलिक, ५ अनुवाद और २ अपूर्ण हैं। एक अनुवाद उन्होंने बंगला से किया और चार संस्कृत से। उन के संस्कृत अनुवादों में 'मुद्राराक्षस' ने विशेष ख्याति प्राप्त की है। 'कर्पूर मंजरी' का अनुवाद भी बहुत अच्छा हुआ है। उन्होंने बंगला नाटक 'कर्पूर मंजरी' का अनुवाद उस समय किया था, जब वे केवल

१८ बरस के थे। यद्यपि यह अनुवाद बहुत सुन्दर नहीं बन पड़ा, तथापि इस से उनकी प्रतिभा का अन्दाज़ा आसानी से लग सकता है।

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने मौलिक नाटकों में प्राचीन संस्कृत परिपाटी का अनुसरण नहीं किया है। तथापि उन के नाटकों का ढांचा उसी प्रकार का है। बातचीत और दृश्यों के परिवर्तन का ढंग भी वही है। उन के नाटकों के सम्बन्ध में अनेक महानुभावों का ख्याल है कि वे किसी न किसी ग्रन्थ के आधार पर ही लिखे हैं, पूर्णरूप से मौलिक नहीं हैं। यहां तक कि उनकी सर्वश्रेष्ठ मौलिक कृति "सत्य हरिश्चन्द्र" के सम्बन्ध में भी, लोगों की धारणा है कि वह क्षेमीश्वर के, 'चंड-कौशिक' के आधार पर लिखा गया है। 'चंड कौशिक' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' की घटनाओं में, समानता ज़रूर है मगर उन में भारी भेद भी है और बाबू हरिश्चन्द्र की कृति को क्षेमीश्वर की नकल कदापि नहीं कहा जा सकता।

बाबू हरिश्चन्द्र के इन नाटकों का हिन्दी साहित्य में वही स्थान है, जो बंकिम बाबू के उपन्यासों का बंगला-साहित्य में है। ये नाटक प्रारम्भिक युग के हैं और वर्तमान लोकरुचि तथा साहित्यिक नियमों की दृष्टि से वे उच्च कोटि के न होने पर भी इनकी श्रेष्ठता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

भारतेन्दु के बाद हिन्दी में श्री प्रताप नारायण मिश्र ने भी नाटक लिखने का अभ्यास किया। परन्तु इस प्रयत्न में उन्हें अभीष्ट सफलता नहीं मिल सकी। मिश्र जी के बाद से आज

तक हिन्दी में जितने नाटककार हुए हैं, उन में श्री जयशंकर प्रसाद का स्थान, हमारी राय में, सर्वश्रेष्ठ है।

बाबू जयशंकर प्रसाद ने करीब आध दर्जन नाटक लिखे हैं। इन में से अधिकांश ऐतिहासिक हैं। वे प्रायः बौद्ध तथा हिन्दू-काल से सम्बन्ध रखते हैं। प्रसाद जी में, पर्याप्त अंश में, ऐतिहासिक बुद्धि भी है इस कारण उनके इन ऐतिहासिक नाटकों में वास्तविकता अक्षुण्ण रह सकी है। वैसे इन नाटकों में अनेक दोष भी हैं; भाषा की क्लिष्टता प्रसाद जी की लेखन शैली का सब से बड़ा दोष है। प्रसाद जी के नाटकों के पात्रों में असाधारणता होते हुए भी उनकी असाधारणता बहुत साधारण ढंग से व्यक्त की जाती है। सम्भवतः यही दोनों कारण हैं कि उन के नाटकों का सर्व साधारण पाठकों में उतना मान नहीं हो सका, जिस के वे अधिकारी हैं।

प्रसाद जी के अतिरिक्त अन्य भी अनेक महानुभाव हैं जिन्होंने हिन्दी में मौलिक नाटक लिखने का प्रयत्न किया है और इस अंश में उन्हें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई है। श्री-गोविन्द वल्लभ पन्त की 'वरमाला' श्रीचतुरसेन शास्त्री का 'उत्सर्ग' श्री बेचन शर्मा पाण्डेय का 'महात्मा-ईसा' और पं० बदरीनाथ भट्ट की 'दुर्गावती' ये चारों नाटक निस्सन्देह अच्छे हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य भी बीसों साहित्यिक नाटक हिन्दी में मौजूद हैं। रंग-मंच पर खेले जाने वाले तथा सिनेमा के काम आने वाले नाटकों की संख्या तो सैंकड़ों में है। श्री राधेश्याम, पं० शैदा, श्री बेताब आदि अनेक महाशय इसी काम में लगे

हुए हैं। परन्तु ये थिएट्रिकल नाटक हिन्दी साहित्य की शोभा बढ़ाने वाले नहीं हैं। इन थिएट्रिकल नाटकों का वड़ा हिस्सा देख कर प्रत्येक साहित्यप्रेमी को दुख होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के वर्तमान नाटक साहित्य की प्रगति दर्शाने के लिए हम नमूने के तौर से कुछ नाटक भी साथ ही दे रहे हैं। इन नाटकों में कुछ मौलिक हैं और कुछ अनुवाद। अनूदित नाटकों में 'सूम के घर धूम' और अचलायतन, तो हिन्दी नाटक साहित्य का भाग ही वन गए हैं।

इन नाटकों को हमने मौलिक रूप में नहीं दिया। इन सभी का संक्षेप कर दिया गया है। परन्तु साथ ही इस वात का भी पूरा ध्यान रक्खा गया है कि इसके द्वारा मौलिक रस में ज़रा भी त्रुटि न आने पावे।

वेदव्यास

विषय-सूचि

—:o:—

———

सूम के घर धूम

(लेखक—द्विजेन्द्रलाल राय)

नाटक के पात्र

—:o:—

दौलतराम—एक महाकंजूस सेठ

बिहारीलाल—दौलतराम का विपत्नीक बहनोई

चुन्नी—दौलतराम की पत्नी

नत्थू—	दौलतराम के पड़ोसी
मोहन—	
रामचन्द्र—	
सुन्दर—	

असामी, परोसिन, दौलतराम के पुत्र, साले, नातेदार, दारोग़ा, सिपाही आदि।

सूम के घर धूम

—:०:—

स्थान—दौलतराम की वाहरी बैठक। समय—दिन।

[फ़र्श, टेबिल, कुर्सी, आदि सब इधर उधर अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ है। पास ही एक पलँग पड़ा है। दीवार में एक घड़ी लगी है। उसमें सात बजकर सत्रह मिनट हुए है।]

[दौलतराम के विपत्नीक वहनोई विहारीलाल और दौलतराम की दुवारा की स्त्री चुन्नी, दोनों खड़े हैं]

विहारी—आज वही वैसाख-वदी चौथ है। मैंने पहले से सबको समझा रक्खा है।

चुन्नी—मगर अब मैं सोचती हूँ कि इस से फल क्या होगा!

बिहारी—फल ? अगर कुछ न होगा तो कम से कम उस बेचारे की जान तो वच जायगी। जानती हो, असामियों ने उसे (तुम्हारे स्वामी को) मौका पाकर मार डालने का निश्चय कर लिया है!

चुन्नी—तो इस में उन का अपराध क्या है? सूद ही के लिए तो रुपये उधार दिये जाते हैं—सूद न लें? जब महाजिनी की—

बिहारी—लोगों—ग़रीबों—का घरद्वार बिकवा लेना महाजिनी है? यह तो राहजनी है! सवेरे उठकर इस डर से कोई उसका नाम नहीं लेता कि उस दिन खाने को नहीं मिलेगा! यात्रा के समय कोई उस का मुख देखना नहीं चाहता! बहुत लोग सवेरे-शाम उसकी मौत मनाते हैं! यह क्या बड़े सुख की अवस्था है?

चुन्नी—तो फिर तुमने जो ढँग सोचा है, वह बहुत अच्छा है—भोजन का भोजन और दवा की दवा! लेकिन निशाना ठीक बैठे, तो बात है।

बिहारी—ठीक बैठेगा! भलेमानस को ज्योतिष के ऊपर बड़ा विश्वास है। ज्योतिषी के कहने पर उसको पूरा विश्वास होगया है कि वैसाख वदी चौथ के दिन दोपहर को अपने ही घर में साँप के काटने से उसकी मौत होगी।

चुन्नी—वे इस समय हैं कहाँ?

बिहारी—मोती झील के भीतर गले भर पानी में यह समझ कर चुपचाप बैठा है कि पानी के भीतर रहने से किस तरह अपने घरमें साँप काटेगा।

चुन्नी—(हँसकर) वाह!

बिहारी—आज बड़ा मज़ा होगा।

चुन्नी—बेशक, बड़ा मज़ा होगा! मगर अभी तक आये नहीं।

बिहारी—आता ही होगा।—तुम से जो जो करने को कह दिया है, सो सब याद है?

चुन्नी—सब याद है?

बिहारी—अच्छा अब भीतर जाओ।

चुन्नी—खूब मज़ा होगा। अब तो देर सही नहीं जाती। (प्रस्थान)

बिहारी—दौलत ने पूर्वजन्म में बड़ा तप किया था, इसी से इस जन्म में उन्हें ऐसी स्त्री मिली है। साले के बे-शुमार रुपये हैं, लेकिन अपनी स्त्री तक को पेट भर भोजन नहीं दे सकता। महामूर्ख है, मूर्ख न होता तो जन्मपत्र के फल पर विश्वास करता!

(नन्दू, मोहन, रामचन्द्र और सुन्दर का प्रवेश।)

बिहारी—तुम लोग आ गये! ठीक समय पर आये—दौलत आता ही होगा।

मोहन—यहाँ सब ठीक है?

बिहारी—सब ठीक है। केवल दौलत के दोनों लड़कों से अभी नहीं कहा गया। तीन दिन से वे घर ही नहीं आये। पैसा खर्च न हो, इस लिए भलामानस उनको पढ़ाता लिखाता भी नहीं! ऐसी दशा में यदि वे बिगड़ न जायँ तो और क्या हो? दोनों लड़के किसी काम के नहीं हैं।

मोहन—(सन्देह से) हाँ !

विहारी—लेकिन वे भी कहना मान जायँगे। वे भी यही राह देख रहे हैं कि कब बूढ़ा सूम मरेगा। बाप के मरने का हाल सुनकर लड़के क्या करते हैं, यह भी वह देख ले।—लो वह आगया दौलतराम ! रामचन्द्र लेट जाओ—लेट जाओ।

(रामचन्द्र लेट जाता है।)

विहारी—तुम सब रामचन्द्र को घेरकर बैठ जाओ।

(सब वही करते हैं। विहारी रामचन्द्र के ऊपर चादर डालता है।)

विहारी—खूब दुःख दिखाने के ढँग से बैठो रामचन्द्र। हिलो-डुलो नहीं।

[सब उसी तरह बैठते हैं।]

विहारी—सब ठीक है ?

सब—ठीक है।

विहारी—तो मैं जाता हूँ। ठीक समय पर आकर पहुँच जाऊँगा, तुम सब दुःख प्रकट करो।

[दौलतराम का प्रवेश।]

दौलतराम - खूब जान बचाई। जन्मपत्र का हिसाब भी गलत होता है। मैंने सोचा था, ठीक दोपहर को जान जायगी। (घड़ी देखकर) दोपहर बीत गई, अब कुछ डर नहीं।

मोहन—आहा-हा-हा ! बेचारा मर गया !

नन्दू—दोपहर को—

सुन्दर—साँप के काटने से !

दौलध—(घबराकर) कौन मरा ?

मोहन—भाग्य के लिखे को—

नन्दू—कोई नहीं मिटा सकता।

सुन्दर—तब भी लोग ज्योतिषशास्त्र को नहीं मानते।

दौलत—अरे मरा कौन ?

नन्दू—लड़कों में से तो कोई अभीतक नहीं आया।

मोहन—कबसे हम लोग बैठे हैं।

सुन्दर—और कबतक राह देखेंगे ? चलो लाश को मसान ले चलें।

दौलत—अरे भाई, किसकी लाश मसान ले जाओगे ?

मोहन—हाय-हाय, सेठ दौलतराम—

नन्दू—आखिरकार—

सुन्दर—मर ही गये !

दौलत—एं ! दौलतराम मर गये। कौन दौलतराम ?

मोहन—ऐसा घर-द्वार—

दौलत—कौन मर गया !

मोहन—जी, सेठ दौलतराम !

दौलत—(खफ़ा होकर) दौलतराम क्यों मरने लगे साहब ?

नन्दू—क्यों मरने लगे, सो हम क्या जानें साहब !—लेकिन मर गये हैं !

सब—आहा-हा-हा !

दौलत—आप लोग कह क्या रहे हैं ? मैं तो जीता-जागता खड़ा हूँ।

मोहन—आप कौन हैं साहब ?

दौलत—मैं ही तो सेठ दौलतराम हूँ।

नन्दू—हूँ !

दौलत—हूँ क्या ?

मोहन—वाह भैया वाह !

नन्दू—यह कौन आदमी है ?

दौलत—आप लोग क्या पागल हो गये हैं ? आप लोग देखते नहीं कि मैं ही दौलत—

मोहन—चले जाइए साहब ! शोक के समय दिल्लगी करना अच्छा नहीं लगता।

नन्दू—कोई गंजेड़ी है क्या !

सुन्दर—चल दे यहाँ से।

दौलत—कैसी आफ़त है ! आप लोग क्या पागल हो गये हैं ? मैं ही दौलतराम सेठ हूँ। देख न लीजिए—

मोहन—हाँ ! अच्छा देखें (देखता है।)

(नन्दू उसका सिर घुमाकर उसे सिर से पैर तक निहारता है और सुन्दर उसके चारों ओर घूम कर देखता है।)

नन्दू—अजी ! देखने में तो सेठजी से बहुत कुछ मिलता जुलता है !

सुन्दर—रूप तो खूब बना रक्खा है !

मोहन—वाह !

दौलत—रूप बनाना कैसा ?

मोहन—हाँ बना तो खूब है ! मगर यह नाक वैसी नहीं है !

दौलत—नाक वैसी नहीं है, इसके क्या माने ? (नाक को टटोल कर देखना) ।

नन्दू—और रंग तो कुछ-कुछ वैसा ही बना लिया है !

दौलत—बना लिया है !

सुन्दर—चोटी भी रख ली है !—भाई वाह !

मोहन—लेकिन यह नाक—

नन्दू—और सुन्दर—हाँ, यह नाक—

दौलत—नाक क्या हुई ?

मोहन—(सिर हिलाकर) नहीं,—नहीं बनी !

नन्दू—ऊँ हूँ !

सुन्दर—असामियों को धोका न दे सकोगे ।

दौलत—क्या ! तो आप लोग क्या यह कहना चाहते हैं कि मैं दौलतराम नहीं हूँ ?

मोहन—वाह भैया वाह ! तुम्हारी हिम्मत बेशक तारीफ़ के लायक है । बोली भी वैसी ही बना ली !

नन्दू—बेशक !

सुन्दर—नकल बुरी नहीं की ।

दौलत—आप लोग-कौन हैं आप लोग ?

[असामियों का प्रवेश] ।

पहला असामी—क्यों साहब, सेठ दौलतराम क्या मर गये ?

मोहन—जी हाँ, हम सब उनकी लाश को मसान लिये जाते हैं ।

दूसरा असामी–ओह ! यही वह आदमी है ।

तीसरा असामी–जो सेठजी का रूप रखकर आया है ?

दौलत–रूप रखकर आया है ?

सुन्दर–हाँ, यह वही आदमी है ।

चौथा असामी–यह कोई ठग है ।

दौलत–ठग है !–निकल जाओ मेरे घर से ।

प० असामी–तुम निकल जाओ ।

दौलत–यह मेरा घर है ।

दू० असामी–आह ! हम लोगों को धोखा देने आये हो ! लेकिन हम धोखा नहीं खा सकते ।

च० असामी–हम एक पैसा न देंगे ।

दौलत–नालिश होने पर एक पैसे से बहुत अधिक देना पड़ेगा ।

ती० असामी–नालिश करेगा ! हिम्मत तो देखो ।

प० असामी–मैं तुमको पुलिस के सपुर्द कर दूँगा ।

ती० असामी–बुलाओ पुलिस !

चौ० असामी–मैं तुम्हारा सब ढोंग अभी निकाले देता हूँ ।

दू० असामी–जाओ जी, पुलिस को तो बुला लाओ ।

[पहले असामी का प्रस्थान]

मोहन–चलो नन्दू ! हम लोग लाश ले चलें । कहाँ तक राह देखेंगे ।

सुन्दर–उठाओ ।

नन्दू–हाँ उठाओ—

[लाश को उठाना] ।

सब–राम नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्त है ! [प्रस्थान]

दौलत–ये लोग मसान किसकी लाश ले गये । दौलतराम सेठ की ? तो फिर मैं कौन हू ?

दू० असामी–धोखेबाज़ ?

दौलत–गाली-गुफ्ता न करना, कहे देता हूँ–

ती० असामी–अच्छा रूप रक्खा है !

दौलत–फिर !

चौ० असामी–मारो साले को !

दौलत–अजी साहब–

सब–चुप रहो ।

[क्रमशः सबका मिलकर उसे मारना] ।

दौलत–सिपाही, ओ सिपाही !

[एक तरफ से दौलत की लड़की और दूसरी तरफ़ से बिहारी का प्रवेश] ।

बिहारी–क्या है जी, क्या है । यह गोलमाल और गुलगपाड़ा काहे का है ?

दौलत–आगये बिहारी, देखो तो भाई–

सब–चुप रहो ।

बिहारी–मामला क्या है !

दौलत–यही, ये लोग देखो तो–

सब–चुप रहो– ।

बिहारी–अरे भाई मामला क्या है ?

दू० असामी–जी, सेठ दौलतराम मर गये हैं ?

ती० असामी–यही सुनकर हम लोग भी आये हैं ।

चौ० असामी–लेकिन बीच में यह पाजी न जाने कहाँ

से सेठ दौलतराम का रूप रख कर आ गया !

दौलत–लेकिन मैं–

सब–चुप रहो।

बिहारी–आः–गोलमाल क्यों करते हो साहब ! मैं सब ठीक किये देता हूँ !–सेठ दौलतराम मर गये हैं ?

दू० आदमी–जी हाँ।

बिहारी–मैंने तो नहीं सुना ! ऐसा हो ही नहीं सकता !

दौलत–देखो तो ! मैं जीता जागता–

सब–चुप रहो ।

बिहारी–आः क्या करते हो ! तुमको ठीक मालूम है कि सेठ जी इन्तकाल कर गये ?

ती० असामी–जी हाँ। आपके आने के कुछ ही पहले लोग उनकी लाश को मसान ले गये हैं।

बिहारी–कब ?

चौ० असामी–अभी दोपहर को।

बिहारी–कैसे मरे ?

दू० असामी–साँप के काटने से।

बिहारी–दोपहर को साँप ने काटा ! ऐसा हो ही नहीं सकता।

दौलत–देखो तो भाई–यह अत्याचार देख रहे हो ! मेरे जीते जी ही–

सब–चुप रहो !

बिहारी–दोपहर को साँप के काटने से कैसे मरे ?

दू० असामी–कोई उपाय न था, जन्मपत्र में लिखा था। क्या करते ?

बिहारी–अच्छा, जन्मपत्र निकालो। (लड़की से) ले तो आ बेटी अपने बाप का जन्मपत्र।

(लड़की का जाना)

विहारी–जन्मपत्र में लिखा है?—ठीक जानते हो?

चौ० असामी–ठीक।

ती० असामी–हम लोग क्या झूठ कह रहे हैं?

दौलत–लेकिन मैं जीता हूँ।

बिहारी–अच्छा ठहरो, कुंडली देखने से आप मालूम पड़ जावेगा।

दौलत–यह तो वड़ी मुश्किल देख पड़ती है–क्या तुम भी मुझ को नहीं पहचानते।

विहारी–आप घवराते क्यों हैं साहव, वह देखिये जन्मपत्र आगया।

(लड़की का जन्मपत्र लाकर विहारी को देना।)

विहारी– कहाँ लिखा है?

चौ० असामी—देखूँ—यह देखिये—वैसाख वदी चौथ के दिन दोपहर को साँप के काटने से मौत लिखी हुई है। स्पष्ट ही तो लिखा है कि चौथ के दिन दोपहर को केतु की दशा उतरने के पहले घर में साँप के काटने से मौत होगी।

विहारी–हाँ, ठीक तो है। (लड़की से) जाओ वेटी तुम भीतर जाओ।

(लड़की का जाना।)

विहारी–(चिन्तित भाव से पढ़ते-पढ़ते और मूछों पर हाथ फेरते) हूँ ठीक! लिखा हुआ तो है।

दौलत–लेकिन तुम तो भाई मुझे पहचानते हो।

विहारी–(धीरे-धीरे सिर हिला कर) ऊँ, हूँ !––केस ख़राव है।

(मोहन का प्रवेश।)

मोहन–यह डाक्टर का दिया हुआ सेठ जी की मौत का सर्टिफ़िकेट भी लीलिये।

विहारी–क्या ? सर्टिफ़िकेट ?

मोहन–हाँ, यह देखिए, दौलतराम सेठ के मरने की बात लिखी हुई है—मैं प्रमाणित करता हूं कि सेठ दौलतराम मर गए।

दौलत–अरे वाप रे !

विहारी–साहव—आपका केस धीरे-धीरे बहुत ही ख़राव होता जा रहा है। शायद चल ही नहीं सकता।

दौलत–क्यों ?

विहारी–इधर जन्मपत्र है, उधर डाक्टर का सर्टि-फ़िकेट है।

ती० असामी–फिर हम सब लोगों ने अपनी आँखों से देखा है कि लोग सेठ दौलतराम की लाश मसान ले गये हैं।

विहारी–सब ने देखा है ?

असामी लोग–सब ने !

विहारी–ऊँ हूँ—केस किसी तरह टिक नहीं सकता।—इतने पर भी अगर कोई ज़िन्दा रहे तो—

दौलत–(आग्रह के साथ) तो फिर ?

विहारी–तो वह जीना नामंज़ूर।

दौलत–विहारी ! तुम भी क्या मुझको नहीं पहचान सकते ?

विहारी–इस से अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। पृथ्वी पर कभी-कभी दो आदमी बिलकुल एकही सूरत के देख पड़ते हैं। जैसे जोड़ियां की पैदाइश। इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि दौलतराम के बाप के दो जोड़िया लड़के नहीं पैदा हुए थे। दौलतराम के पिता से कभी यह बात पूछी नहीं गई। और इस समय उनसे पूछना भी असंभव है, क्योंकि वे इस समय स्वर्ग में हैं।

दौलत–लेकिन मैं जो कहता हूँ।

विहारी–आपकी बात मानी नहीं जा सकती। आप कौन हैं, यही तो मामला पेश है। अगर मैंने आपको दौलतराम मान ही लिया, तो आप साबित क्या करेंगे ? आप के कहने से कुछ साबित नहीं होता।

दौलत–तो फिर कैसे साबित होगा ?

विहारी–आपके कोई गवाह हैं ?

दौलत–नहीं। और उसकी ज़रूरत ही क्या है ?

विहारी–ये सब लोग एक स्वर से कहते हैं कि आप सेठ दौलतराम नहीं हैं (असामियों से) क्यों ! आप लोग कहते हैं न ?

असामी–हाँ, हम सब कहते हैं।

दौलत–आप लोग क्या सचमुच गम्भीर भाव से यह बात कहते हैं ?

सब असामी–गम्भीर ! ज़रा इधर देखिए (अत्यन्त गम्भीर भाव से) आप सेठ दौलतराम कभी नहीं हैं।

दौलत–तो क्या सचमुच मैं सेठ दौलतराम नहीं हूँ ?

दू० असामी–कभी नहीं।

ती० असामी–दौलतराम का क्या ऐसा ही चेहरा था ?

चौ० असामी–दौलतराम बनकर असामियों को धोखा देने आये हो भैया !

पाँ० असामी–मैं तो देने के नाम एक पैसा भी न दूँगा।

दौलत–मैं नालिश करूँगा।

विहारी–अदालत में तुम्हारी नालिश मंजूर ही कब होगी। इन्होंने तो सेठ दौलतराम से कर्ज़ लिया था। आप तो सेठ दौलतराम हैं ही नहीं ?

दौलत–मैं प्रमाण दूँगा।

विहारी–सावित करना मुश्किल हो जायगा। (असामियों से) आप सब लोग शायद गवाही देंगे कि यह सेठ दौलतराम नहीं है।

सब असामी–(एक साथ) ज़रूर।

विहारी–फिर क्या हो सकता है ?

[दौलत का हताशभाव दिखाना]।

विहारी–साहब, मैं वकील हूँ। आपको दोस्त के तौर पर सलाह देता हूँ कि ऐसा काम न कीजिएगा, नहीं तो जेल जाना पड़ेगा।

दौलत–जेल ?

विहारी–हाँ जाली आदमी बनने के जुर्म में ! चार साल के लिए !

दौलत–अरे बाप रे !

बिहारी—यद्यपि मैं आप को नहीं पहचानता, तथापि दोस्त की तौर पर समझाता हूँ कि जानबूझ कर इस आफ़त में पैर न रखना! सुनिए, आप किसी तरह पूरे तौर से यह साबित न कर सकेंगे कि आप दौलतराम सेठ हैं।

दौलत—क्यों?

बिहारी—इस आपके जन्मपत्र ने ही सब मामला बिगाड़ रक्खा है। आप ही कीहिए, जन्मपत्र कहीं झूठा होता है?

दौलत—(सिर खुजाते हुए) हाँ, जन्मपत्र तो कभी झूठा नहीं होता।

बिहारी—उसके ऊपर डॉक्टर का सर्टिफ़िकेट, जो लोग मरे को जिला नहीं सकते, मगर ज़िन्दा को अनायास ही मार डाल सकते हैं। मैं कहता हूँ, आपके सेठ दौलतराम होने में घोर सन्देह है, और अगर आप हों भी तो उसे साबित करना असम्भव है।

दौलत—तुमको भी सन्देह है?

बिहारी—आप ही सोच कर देखिए। आप को खुद क्या सन्देह नहीं होता? इधर जन्मपत्र, उधर डॉक्टर का सर्टिफ़िकेट!

दौलत—डॉक्टर ने क्या सचमुच लिखा है कि मैं मर गया?

बिहारी—यह देखिए न। (सर्टिफ़िकेट देना।)

दौलत—(सिर खुजाते हुए) हाँ, लिखा तो है!

बिहारी—आप के सामने ही वे लोग सेठ जी की लाश को मसान ले गये, और फिर भी आपको अपने सेठ दौलतराम होने में सन्देह नहीं होता?

दौलत–(धीरे से) हाँ, ले तो गये हैं। (सिर पकड़ कर) मुझे चक्कर आ रहा है।

[अख़बार पढ़ते-पढ़ते नन्दू का प्रवेश]

नन्दू—

मर गये लाला दौलतराम, जो थे सूम बहुत बदनाम।
लेते बेशुमार थे सूद, वैसे हुए नेस्तनाबूद।
जोंक बना था वह मनहूस, ऋणी-रक्त-धन लेता चूस।
कष्ट उठाकर था धन जोड़ा, मरने पर अब जाकर छोड़ा।
जिनको बदा वही खावेंगे, सेठ किये का फल पावेंगे।

बिहारी–यह क्या ! अख़बारों में भी सेठजी के मरने का हाल छप गया ?

नन्दू–जी हाँ।

बिहारी–क्या छापे के अक्षरों में ?

नन्दू–देखिए न।

बिहारी–(अख़बार देख कर दौलत से) साहब, आप का केस एकदम खराब हो गया है।

[दौलतराम सिर पकड़ कर बैठ जाता है।]

बिहारी–(असामियों से) आप लोग इस समय अपने अपने घर जाइए। मैं अब दौलतराम की जायदाद को इन्तज़ाम में लेने का प्रबन्ध करने जाता हूँ।

दौलत–(उठ कर) इन्तज़ाम का अधिकार ! कौन लेगा ?

बिहारी–दौलतराम की विधवा स्त्री। अब मुझे ही इस जायदाद का इन्तज़ाम करना होगा। क्या करूँ ?—(असामियों

से) तुम पर जो रुपये बाकी हैं, उनका सूद अब तुम से नहीं लिया जायगा।

दौलत—क्यों ?

असामी—जय हो बिहारी भैय्या की जय हो !

[प्रस्थान।]

दौलत—(बिहारी से) सूद क्यों न लिया जायगा ?

बिहारी—सूद लेने की ज़रूरत क्या है ? सेठ जी बहुत-सा रुपया छोड़ गये हैं।

दौलत—छोड़ गये हैं ! (नम्रता दिखाते हुए) बिहारी, भाई ! लेकिन मैं तो मरा ही नहीं ! तुम्हारी कसम, मैं नहीं मरा !

बिहारी—मैं क्या करूँ साहब ? कानून से आप का जीना साबित नहीं होता।

[प्रस्थान।]

[परोसिनों का प्रवेश]

१ परोसिन—अच्छा हुआ।

२ परोसिन—आफत गई।

३ परोसिन—बहुत रुपये जमा कर गया है। आप भर पेट नहीं खा सका—

४ परोसिन—अब दस गैर लूटकर खायेंगे !

५ परोसिन—सूम का धन इसी तरह जाता है।

दौलत—सुन सुनकर मुझे भी सन्देह हो रहा है कि मैं जीता हूँ या मर गया हूँ ! परोसिनो !—

१ परोसिन—यह कौन है ?

दौलत—मैं—

२ परोसिन—बहुरूपिया ?

दौलत–दौलतराम—

३ परोसिन–अरे मर !

दौलत–सेठ।

४ पदोसिन–मर गया !

दौलत–नहीं, अभी नहीं मरा !

५ परोसिन–निकल यहाँ से मुर्दे।

दौलत–मैं निकलूँ ?—यह मेरा घर है, हरामज़ादियो तुम निकलो !

१ परोसिन–यह कौन है रे !

२ परोसिन–हम क्यों निकलें रे ?

३ परोसिन–क्यों निकलें ?

४ परोसिन–बतला तो सही !

५ परोसिन–मर मुर्दे !

दौलत–(अवाक् होकर) वाह !

१ परोसिन–कलमुहा मर गया, अच्छा हुआ। (बैठती है।)

२ परोसिन–लोगों की जान बची। (बैठती है।)

३ परोसिन–दोनों लड़के पेट भर खायेंगे। (बैठती है।)

४ परोसिन–लड़की मगर खाने को न पावेगी (बैठती है।)

५–बुड्ढे को नरक में भी जगह न मिलेगी। (बैठती है।)

दौलत–बैठ गई !—दौलतराम सम्भालो ! तुम्हारा अस्तित्व ही मिटाया जा रहा है ! अपने को बचाओ—नहीं तो बस मरे !—(परोसिनों से) निकलो यहाँ से, निकलो—निकलो ! न निकलोगी ? अच्छा ठहरो—(बाहर से लकड़ी लाकर) निकल जाओ, इसी में खैर है, नहीं तो देखो इसी

लकड़ी से—

परोसिन—वाह, खूब बना है !

दौलत—निकलो !

२ परोसिन—मारेगा क्या ?

दौलत—मार डालूँगा। (लाठी घुमाते हुए) निकलो !

३ परोसिन—मार तो सही ! देखें तो ! (ईंट उठाना।)

दौलत—अरे बाप रे (पीछे हटता है।)

४ परोसिन—निकल मुर्दे निकल, नहीं तो सिर तोड़ दूँगी !

दौलत—(डरकर) नहीं नहीं—मैं जाता हूँ।

५ परोसिन—नहीं तो (झाड़ू उठाकर) यह झाड़ू देखी है ?

दौलत—अरे बचाओ।

[दौलत भागता है और उसके पीछे दौड़ती हुई परोसिनें जाती हैं। दौलत की लड़की का प्रवेश।]

लड़की—लाला जी ! लाला जी ! अम्मा रो रही हैं।

[दौलतराम का प्रवेश।]

दौलत—कौन रो रहा है ?

लड़की—अम्मा।

दौलत—क्यों ?

लड़की—मैं क्या जानूँ ?

[नेपथ्य में विलाप]

"अरे तुम कहाँ चले गये—तैयार रसोई छोड़ कर कहाँ चल दिये—ऊँ हूँ हूँ हूँ !"

दौलत—वाह वाह, औरत तक ने मरा समझ कर रोना शुरू कर दिया ! अरे मनुआ की अम्मा—मैं जीता हूँ। आया।

(लड़की से) चलो बेटी।

[कन्या का जाना और उसके पीछे दौलतराम का जाने की चेष्टा करना। दौलतराम के सालों का प्रवेश। उनके साथ सन्दूक, पिटारे, ट्रंक वगैरह हैं]।

१ साला–ले चलो, ले चलो !

दौलत–अब यह क्या है ?

२ साला–अजी कुली को बुलाओ ?

१ साला–कुली ! कुली ! [प्रस्थान]

दौलत–अरे कुली को क्यों पुकारते हो ? सब सामान क्यों घर से बाहर निकाल फेंके देते हो ?

२ साला–ले जायँगे।

दौलत–कहाँ ?

१ साला–कहाँ ? और कहाँ अपने घर !—

दौलत–क्यों मेरा सामान अपने घर क्यों ले जाओगे ?

२ साला–तुम्हारा सामान ?

दौलत–जी।

१ साला–(व्यंग के तौर पर) जी,–लो कुली आ गये ?

[तीन चार कुलियों के साथ तीसरे साले का फिर प्रवेश]।

२ साला–उठाओ ! पहले यह लोहे का सन्दूक उठाओ !

[कुली लोग लोहे का सन्दूक उठाने की कोशिश करते हैं]।

दौलत–खबरदार (आगे बढ़ता है)।

१ साला–चुप रहो ! (मारने को तैयार होता है)।

दौलत–बिहारी ! बिहारी ! (जाता है)।

[सब सालों का एक दूसरे को देख कर इशारा करना और हाथ की ओट करके हँसना]।

१ साला–बिहारी को लेकर फिर आ रहा है।

२ साला–(कुली से) झट उठाओ—

३ साला–जल्दी जल्दी !

[बिहारी के साथ दौलतराम का प्रवेश]।

दौलत–बिहारी, देखो तो सही कैसा अन्धेर है—

बिहारी–(दौलत के सालों से) क्यों साहब ! आप लोग घर का असबाब कहाँ लिये जा रहे हैं ?

१ साला–क्यों न ले जायँ ? ये सब चीज़ें अब हमारी बहन की हैं।

२ साला–वह अब हम लोगों के पास रहेगी।

३ साला–क्यों कि हमारे जीजा जी मर गये हैं।

दौलत–देखते हो अंधेर। मेरे जीते जी यह अत्याचार हो रहा है। उधर स्त्री जा रही है और इधर मेरा सब कुछ—(रोता है)।

बिहारी–(दौलत से) अब आप भी जाइए। यह घर अब मेरा है। सेठ दौलतराम मर गये।

दौलत–लेकिन मैं तो मरा नहीं।

बिहारी–इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता है। कोई गवाह है ?

दौलत–क्यों, मेरी स्त्री गवाही देगी।

बिहारी–अच्छी बात है, अपनी स्त्री को बुलाइए।

दौलत–सुनती हो मनुआ की अम्मा ! जरा इधर आओ। लज्जा करके अब क्या होगा ? मैं जान और माल से जा रहा हूँ। बाहर आओ।

[चुन्नीका प्रवेश और रोते हुए गाना]।

यह कढ़ी पकौड़ी बड़े, मुँगोड़ी, भाजी।
है सभी रसोई अभी बनाई ताजी॥
विधना, तूने क्या निठुर ठान ठाना है?
अफसोस, अकेले मुझे सभी खाना है॥
तुमको न बदे थे खान-पान ये न्यारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ सिधारे प्यारे॥

दौलत–रसोई बनाई है? मैं भी तुम्हारे साथ खाऊँगा! आहा कैसी सती लक्ष्मी है!

[चुन्नी का रोते हुए गाना]।

मल मलकर नित्य खिजाव अजीब मसाले।
सन ऐसे उजले बाल बनाकर काले॥
ज्वानीकासा सब रंग ढंग दिखलाना।
सोने के तारो बँधे दाँत चमकाना॥
सपने ऐसी वह हँसी हुई दैयारे!
इस तरह छोड़कर कहाँ सिधारे प्यारे॥

दौलत–अरे मैं हँसूँगा। [दाँत निकालकर हँसता है]।

चुन्नी–अरे बापरे! यह कौन है?

दौलत–मैं तुम्हारा स्वामी हूँ–तुम्हारा प्यारा हूँ–तुम्हारा नाथ, सेठ दौलतराम हूँ। देखो, ज़रा इधर देखो।

चुन्नी–(घूँघट–खोलकर, देखकर) अरे बापरे! (मूर्च्छाका) अभिनय करती है।

दौलत–एं! यह क्या बात है?

विहारी–तू कौन पाजी है! भले आदमीकी औरत के बदन

में हाथ लगाता है?

दौलत–यह तो मेरी ही स्त्री है।

बिहारी–तुम्हारी?

दौलत–हाँ!

बिहारी–तुम बड़े भले आदमी हो!

दौलत–यह मेरी स्त्री है।

[चुन्नी का उठना]।

दौलत–वह देखो, होश आ गया।

चुन्नी–मैं उनके बिना नहीं जी सकती।

बिहारी–धन्य पतिव्रता!

चुन्नी–मैं अवला सरला विह्वला वाला—

बिहारी–अहा हा हा!

चुन्नी–दैव की सताई दुःख पाई मुरझाई—

बिहारी–हाय हाय!

चुन्नी–मैं अलबेली नवेली अकेली कैसे रह सकती हूँ?

बिहारी–अकेली क्यों रहोगी मोहिनी, मायाविनी, बिहारी के जीते जी तुमको काहे की चिन्ता है?

दौलत–बिहारी तुम्हारी यह हरकत?

चुन्नी–अभी मेरे पति का पीछा हुआ है—

बिहारी–मेरी भी स्त्री अभी मरी है—

चुन्नी–मन की हालत—

बिहारी–बहुत—

दौलत–खराब है! सो तो समझा। लेकिन—

बिहारी–(चुन्नी से) जाओ, अब तुम भीतर जाओ! मैं

ब्याह की तैयारी करने जाता हूँ।

[चुन्नी का जाना]।

दौलत–कैसे! ब्याह और क्रियाकर्म एक साथ ही होगा? हा जगदीश्वर!

बिहारी–लाठी कहाँ है? यह है। (लाठी लेना)।

दौलत–लकड़ी की क्या जरूरत है?

बिहारी–स्त्री को वश करने की तैयारी पहले ही से कर लूँ। ५,०००) रुपये का गहना है। १,०००) रुपये नकद तो चुन्नी के ही पास हैं।

दौलत–देखो, तुम मेरे बहनोई हो, वकील हो। तुम ऐसे नीच नहीं हो सकते कि मेरे जीते ही मेरी स्त्री से ब्याह करो।

बिहारी–नीच कैसा? विधवा से ब्याह करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

दौलत–किन्तु वह तो मेरी स्त्री है।

बिहारी–यह बात तो वह खुद नहीं स्वीकार करती।

दौलत–ईश्वर! (रोता है)

बिहारी–देखिए साहब, आपको देखकर मुझे दुःख होता है। शायद आप दौलतराम सेठ ही हों। किन्तु प्रमाण नहीं है। कानून के सामने आप टिक नहीं सकते। बतलाइए, क्या करूँ?

दौलत–यही तो बात है। स्त्री ने नहीं पहचाना! या मैं सच-मुच, मर गया हूँ, देखूँ। समस्या यह है कि मैं मर गया हूँ या जीता हूँ? मैं लहरों में पड़कर तूफ़ान से भरे संसार सागर में बहा-बहा फिर रहा हूँ; या खेल खेल रहा हूँ? मैं शेर, रीछ, साँप आदि से परिपूर्ण वन के घोर घने अन्धकार में रो रहा

हूं, या गाना गाता हूँ ? चुटकी काटकर देखूं, (चुटकी काटता है) लगती तो है ! सिर हिला डुला कर देखूं ! (वैसा ही करता है) कुछ भी समझ में नहीं आता !—नहीं, यह न जीना है, न मरना है। यह जीने-मरने की एक खिचड़ी है ! कैसी आफत है ! मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मेरी ऐसी दशा होगी।—ये कौन हैं ? ये तो सब मेरे सगे हैं ! अच्छा, छिपकर देखूँ, ये क्या करते हैं ? (छिपता है।)

[बाजेगाजे के साथ दौलतके नातेदारों का प्रवेश]

१ आदमी—यहीं बैठो ! (बैठता है)

२ आदमी—हाँ, आज ज़रा जी भरकर आनन्द मनालें। (बैठता है)

३ आदमी—(बैठकर) बुड्ढा अब जाकर मरा।

४ आदमी—मैं तो बहुत खुश हुआ। (बैठता है)

५ आदमी—एक पैसा किसी को नहीं दिया। (बैठता है)

१ आदमी—बड़ा कंजूस था।

४ आदमी —वह समझे हुए था कि मैं कभी नहीं मरूँगा।

२ आदमी–तो यह प्रमाणित हुआ कि दौलतराम सेठ को भी मौत नहीं छोड़ती !

४ आदमी–खूब कहा–हाः हाः हाः हाः हाः–

५ आदमी–हाः हाः हाः हाः–

दौलत०–ये लोग तो खूब खुश दीख पड़ते हैं।

१ आदमी–बुड्ढा बड़ा सूम था।

२ आदमी–आफ़त गई।

दौलत०–एसानमन्द हूँ।

३ आदमी–वसीयतनामे में ज़रूर हम लोगों के लिए कुछ लिख गया होगा।

दौलत–(अँगूठा दिखाकर)एक पैसा भी नहीं।

५ आदमी–किसी को तो दे ही गया होगा।

दौलत–किसी को नहीं।

६ आदमी–साथ में ले जा सकेगा नहीं।

दौलत–सन्दूकों को न ले जा सकूँगा, चाबियों का गुच्छा तो ले जा सकूँगा ?

२ आदमी–दूसरे जन्म में सिर पीटेगा।

दौलत–सिर पीटने को तो जी अभी चाहता है।

३ आदमी–आप न कुछ खाया न पीया–देखो तो !

दौलत–भाई, अब ऐसा न होगा दिन को अंगूर वगैरह मेवा और रात को बढ़िया भोजन !

४ आदमी–अब उसके दोनों लड़के सारी दौलत उड़ावेंगे।

दौलत–छोड़ जाऊँगा, तब न।

५ आदमी–अच्छा अब गाओ जी।

दौलत–अच्छा गाओ, सुनूँ।

(सबका गाना।)

गजल

प्राण रक्षा में बड़ी हैं झंझटें, यदि जानते।
तो न करते हम कभी इस जन्म की ही चाहना॥
भोर होते नींद खुलती, हर घड़ी आफ़त खड़ी।
आयु को अपनी बिताना, घोर है शव-साधना॥
स्नान करते भूख लगती है सुलगती आगसी।

तब जुटाना अन्न का, उसको निगलना चाबना ॥
अन्न चुक जाता, न बुझती पेट की ज्वाला अहो।
नोन है तो घी नहीं संयोग कुछ ऐसा बना ॥
लेटते ही मक्खियाँ दिन को हमेशा दिक करें।
रात को फिर मच्छरों का जुल्म होता है घना ॥
हाय, आधी रात को जेवर जड़ाऊ के लिए।
रूठना रोना प्रिया का मिनमिनाना माँगना ॥
चीज़ लो तो दाम उसके माँगते हैं फिर असभ्य।
राह रोके हैं महाजन और करते लुचपना ॥
व्याह करते ही कई बच्चे भी हो जाते हैं हाय।
ब्याहने में और पढ़ाने में दिवाला पीटना ॥

(दौलतराम के दोनों पुत्रों का प्रवेश।)

१ पुत्र—जायदाद आधी मेरी है।

२ पुत्र—एक पैसा भी तुम्हारा नहीं है। लाला जी वसीयतनामे में सब मेरे नाम लिख गये हैं।

दौलत—लिख गया हूँ? कहाँ? मुझे तो नहीं याद!

१ पुत्र—वसीयतनामा जाली है। मैं साबित करूँगा।

२ पुत्र—कभी नहीं।

१ पुत्र—कभी नहीं।

२ पुत्र—मैं मिस्टर दास को अपनी ओर से खड़ा करूँगा।

१ पुत्र—मैं बैरिस्टर जैक्सन से पैरवी कराऊँगा।

२ पुत्र—मैं दस हज़ार रुपये खर्च करूँगा।

१ पुत्र—मैं पन्द्रह हज़ार रुपये उठाऊँगा।

२ पुत्र—तू बेईमान है!

१ पुत्र—तू धोखेबाज है !

२ पुत्र—तू मूसा है !

१ पुत्र—तू मच्छर है !

२ पुत्र—मेरे घर से निकल जा !

१ पुत्र – तेरा घर !—तेरे बाप का घर है ?

२ पुत्र—निकलो—

१ पुत्र—चुप रह—

२ नातेदार—अजी झगड़ा क्यों करते हो ? आज खुशी मनाओ। ऐसा आनन्द का दिन, तुम्हारे बाप मरे हैं !

३ नातेदार—हाँ, पेट भर कर खाओ।

४ नातेदार—जी भर कर आनन्द मनाओ।

५ नातेदार—नाचो !

२ नातेदार—गाओ !

१ नातेदार—मैंने एक गीत जोड़ा है !

२ नातेदार—हाँ गाओ, वही गीत

३ नातेदार—कौन ?

१ नातेदार—वही जो मैंने जोड़ा है,—'बुड्ढा मरा है—'

दौलत—इसी बीच में गीत भी बन गया ! बलिहारी !

(सब का गाना)

बुड्ढा मरा है बुड्ढा मरा है।
बुड्ढा मरा है, मरा है मरा है॥

दौलत—बस, अब तो सहा नहीं जाता।

(सब का गाना)

बुड्ढा मरा है, मरा है, मरा है।

[दौलतराम लकड़ी हाथ में लिये आगे बढ़ कर गाता है—]

बुड्ढा मरा नहिं, बुड्ढा मरा नहिं।
देखो अजी अभी बुड्ढा मरा नहिं ॥

१ पुत्र–ऐं ऐं! यह कौन है ?

२ पुत्र–हाँ, यह कौन है ?

दौलत–(लड़कों से) तुम चाहे जितना आश्चर्य प्रगट करो, लेकिन मुझको विश्वास है कि बुड्ढा अभी नहीं मरा और वह सशरीर तुम्हारे आगे खड़ा है।

१ पुत्र–कैसे ?

२ पुत्र–ठीक तो है, कैसे ?

नातेदार लोग–(तुम कौन हो जी, हमारे गाने में खलल डाल दिया! निकलो। तुम कौन हो ?

दौलत–मैं इन दोनों लड़कों का बाप हूँ।

नातेदार–बाप! हो ही नहीं सकता। हम विश्वास ही नहीं करते। तुम साबित करो कि बाप हो।

दौलत–सब कुछ साबित ही करना होगा। भाइयो! सुनो—इस बात को तो कोई नहीं साबित कर सकता कि वह बाप है। इस बात पर तो विश्वास ही कर लिया जाता है।

नातेदार–नहीं, हम लोग विश्वास नहीं करते। निकल जाओ।

दौलत—कहाँ जाऊँ ?

नातेदार–यह हम क्या जानें ? हम नहीं जानते।

दौलत–दोनों लड़कों ने पहचान लिया है, मगर मुँह से

स्वीकार नहीं किया। वाह्रे कलजुगी लड़के।

नातेदार–(दौलत से) अजी सोचते क्या हो? दूधिया भंग है। पियोगे ? लो ज़रा सी।

दौलत–(कुछ सोच कर) मैं तो जीता हूँ, फिर दूधिया क्यों छोड़ूँ। (भंग लेकर पीता है)।

दौलत–(पड़े ही पड़े। नशे में) अवे चुप—मैं सेठ—दौलतराम हूँ। या नहीं ?—फिर—मैं कौन हूँ ? कौन भाई बिहारी, आ गये।

[बिहारी दारोगा के वेप में रामचन्द्र, एक हवलदार और सिपाहियों के वेष में नन्दू, मोहन और सुन्दर का प्रवेश]

बिहारी–हाँ आगया दादा—

नातेदार–अरे पुलिस आ गई। भागो भागो! (भाग जाते हैं)।

बिहारी–(दारोगा से) यही दौलतराम बन कर आया है—असामियों को धोखा देने के लिए।

दारोगा–क्या तुम कहते हो कि मैं सेठ दौलतराम हूँ ?

दौलत–(हाथ जोड़ कर) जी जमादार साहब।

दारोगा–पकड़ो इसको।

[सिपाहियों का पकड़ लेना]।

दौलत–जी मैं—

दारोगा–दौलतराम सेठ है !

दौलत–(काँपता हुआ) जी, कभी किसी जन्म में नहीं !

दारोगा–तब उसके जैसा रूप रख कर क्यों आया ?

दौलत–जी—

दारोगा–झूठ, सच बोलो।

दौलत–दारोगा साहब, मेरे कहने के पहले ही आप ने मेरी बात को झूठा ठहरा लिया!

दारोगा–वह मैं जानता हूँ।

दौलत–दारोगा साहब, यह तो मैं जानता था कि पुलिस के आदमी सर्वशक्तिमान् होते हैं, लेकिन यह न जानता था कि सर्वज्ञ भी होते हैं।

दारोगा–सच बोलो। (रूल का हूला मारना)।

दौलत–जी वही कहने वाला था, लेकिन इस मार से तो सच बात भूली जाती है। अब मैं क्या कहूँ तो आप खुश हों?

दारोगा–कि मैं दौलत सेठ नहीं हूँ। (रूल दिखाता है)।

दौलत–कभी नहीं। मारो न बाबा!

दारोगा–फिर तुम कौन हे?

दौलत–संपत सेठ—

दारोगा–संपत सेठ कौन?

दौलत–दौलत सेठ का छोटा भाई।

दारोगा–तो फिर दौलत सेठ के जैसा चेहरा बना कर क्यों आया?

दौलत–जी—(सोचता है)

दारोगा–सच बोलो। (रूल का हूला मारता है) उसका ऐसा चेहरा बना कर—

दौलत–हम दोनों जोड़िया भाई थे।

दारोगा–चुप रह।

दौलत–अच्छा चुप रहूँगा।

दारोगा–(बिहारी को दिखा कर) ये कौन हैं ?

दौलत–पहले थे मेरे—अर्थात् दौलतराम के बहनोई ; लेकिन अब उसकी स्त्री के पति हैं !

दारोगा–यह तुम सच कह रहे हो ?

दौलत–जी, मैं झूठ कभी-कभी बोलता हूँ।

दारोगा–नाक रगड़ो, कान पकड़ो।

दौलत–क्यों जमादार साहब ?

दारोगा–चुप रहो, कान पकड़ो।

दौलत–अच्छा साहब। (वही करता है)।

दारोगा–कहो मैं—कभी किसी जन्म में सेठ दौलतराम नहीं था।

दौलत–ऐसा ही होगा साहब ! मैं कभी न था।

बिहारी–सीमा में बंध गया।

दारोगा–अच्छा, छोड़ दो।

बिहारी–(दारोगा से) चलिए, कुछ जलपान कर लीजिए।

दौलत–और मेरी भूतपूर्व विधवा के साथ दारोगा साहब की जान पहचान भी करा देना।

दारोगा–चुप रहो !

दौलत–(डर कर) जी !

[दौलत के सिवा सब चल देते हैं]।

दौलत–(आप ही आप) अन्त को रूल के हूलों से यह साबित हो गया कि मैं दौलत सेठ नहीं हूँ। कहा ही है कि मार के आगे भूत भागते हैं। नहीं भाई मैं मर गया था, यह बात झूठ नहीं है। मैं मर गया था। यह मेरा पुनर्जन्म है ! आज नया

अनुभव और नया विश्वास पाकर मैं फिर जी उठा हूँ। मरने के बाद जो कुछ होने वाला था, वह जीते जी अपनी आँखों से ही देख लिया। गरीबों को सता कर और अपने को भी धोखा देकर जो रुपया मैंने जमा किया है वह इन लोगों के यों उड़ाने के लिए! बस अब नहीं! अब अगर मैं अपना जीना साबित कर सका तो गरीबों को अन्न-वस्त्र बाँटूँगा—और खुद भी पेट भर कर खाऊँगा। जब तक मैं साबित नहीं करता तब तक हँस-लो, खालो। अगर अपना जीना साबित न कर सका तो जंगल को चला जाऊँगा और इस लिए तपस्या करूँगा कि पुनर्जन्म न हो।

[बिहारी और चुन्नी का प्रवेश।]

चुन्नी—(दौलत से) क्या सोच रहे हो।

दौलत—यही कि! (हाथ जोड़ कर बिहारी से) महाशय प्रणाम। (प्रणाम करना, फिर चुन्नी को हाथ जोड़ना) क्या आज्ञा है ?

बिहारी—दौलतराम जी!

दौलतराम—कौन दौलतराम ?

बिहारी—तुम!

दौलत—कौन कहता है! तुम लोगों ने मिल कर अभी साबित कर दिया है कि मैं सेठ दौलतराम नहीं हूँ। अब मैं दौलतराम हूँ ? नहीं, मैं दौलतराम नहीं हूँ।

चुन्नी—अजी खफ़ा क्यों होते हो। तुम तो मेरे प्राणनाथ हो।

दौलत—कैसे! अभी तो सब साबित हो गया है। जन्मपत्र, डाक्टर का सार्टिफ़िकेट, अख़बार, गवाह—और सब से बड़ा

प्रमाण रूल का हूला। इतने पर भी मैं तुम्हारा प्राणनाथ बना हुआ हूँ ! मैं कौन हूँ, मैं नहीं हूँ।

चुन्नी-नहीं, तुम हो।

दौलत-यह सुन कर बहुत खुश हुआ।

चुन्नी-तुम नाहक खफ़ा क्यों होते हो !

दौलत-मैं खफ़ा हूँ, चिढ़ गया हूँ, मुझे हैरान न करो, मैं वन को जाऊँगा।

चुन्नी-मैं भी जाऊँगी।

दौलत-मैं फ़कीर हो जाऊँगा।

चुन्नी-मैं फ़कीरिन हो जाऊँगी।

दौलत-और तपस्या करूँगा कि पुनर्जन्म में मुझे ब्याह न करना पड़े और अगर ब्याह भी करना पड़े तो तुम्हारे साथ न करना पड़े।

चुन्नी-मैं तपस्या करूँगी कि तुम्हारे ही साथ मेरा ब्याह हो।

दौलत-नहीं, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

चुन्नी-वाह, प्यार क्यों नहीं करती।

[बिहारी सिर हिलाता है।]

दौलत-सिर हिलाते हो ? अब क्या कोई और उपद्रव सोच रहे हो ? इधर देखते हो ! यह मेरी स्त्री है। (चुन्नी का हाथ पकड़ता है।

बिहारी-तुम्हारा यही विश्वास है ?

दौलत-विश्वास ! अब क्या यह साबित करना चाहते हो क यह मेरी स्त्री भी नहीं ! जन्मपत्र निकालो—सार्टिफ़िकेट

हासिल करो—अखबार में लिखो।

बिहारी—अच्छा तुम्हारी स्त्री तुम को देता हूँ।

दौलत—बड़ी कृपा हुई!

बिहारी—अच्छा सेठ जी, आप को कुछ शिक्षा मिली या नहीं!

दौलत—बहुत कुछ। यह मेरा पुनर्जन्म है।

गाना

गज़ल (सोहनी)

व्यर्थ ही तूने जमा जोड़ी मिला, सुख क्या मिला ?
हाय इसके वास्ते काटा अनेकों का गला ?
गाड़ना, संदूक में रखना, जमा करना वृथा।
काल के आगे कहीं चलती किसी की है भला ?
जो न परउपकार में या भोग में दौलत लगी।
तो कहो, फिर साथ उसको कौन अपने ले चला ?
दान या तो भोग या फिर नाश धन की गति कही!
जो न देता और खाता, नाश ही उसको फला ॥
सूम के पीछे सभी धन दस जगह लुट जायगा।
इस लिए खाले, खिला ले और बन ले मनचला ॥

[पर्दा गिरता है।]

॥ समाप्त ॥

अचलायतन

(मूल लेखक=श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

पात्र

गुरुदेव—अचलायतन के प्रतिष्ठापक

आचार्य—गुरुदेव के उत्तराधिकारी

उपाचार्य—
उपाध्याय } अचलायतन के अध्यापक

महापंचक—अचलायतन के धर्माधिकारी

पंचक—महापंचक का छोटा भाई और अचलायतन का छात्र

संजीव—
जयोत्तम—
विश्वंभर—
अध्येता— } अचलायतन के बड़े छात्र

सुभद्र—अचलायतन में रहने वाला एक बालक

राजा—स्थविरपत्तन का राजा जिसके राज्य में अचलायतन का मंदिर है

दादा ठाकुर—गुरु देव

माली—मन्दिर का माली

यूनक गण—
दर्भक गण— } स्थविरपत्तन के बाहर की अछूत जातियां

पदातिक, बालकगण, दूत, शंख बजानेवाला, छात्रगण इत्यादि ।

अचलायतन

—:०:—

पहला दृश्य

स्थान—अचलायतन

[पंचक का प्रवेश]

पंचक—

प्रात:काल पुकारा तुमने, कोई यह जानता नहीं,

मेरा मन मन-ही-मन रोवे, कोई यह मानता नहीं।

अरे भाई, कौन है यहाँ ? किसको पुकारूँ, गुरु जी आ रहे हैं !

[संजीव का प्रवेश]

संजीव–मैंने भी यही सुना है। लेकिन खबर यह किस ने लाकर दी ? बतलाओ तो !

पंचक–किसने खबर दी, यह तो कोई बताता नहीं।

संजीव–मगर गुरु जी की अवाई सुन कर तुम को कुछ तैयारी नहीं कर रहे हो पंचक ?

पंचक–वाह, इसी लिये तो पोथी-पत्रा सब फेंक दिया है।

संजीव–यही शायद तुम्हारा तैयारी करना है ?

पंचक–अरे भाई, गुरु जी जब नहीं रहते, तभी पोथी-पत्रे से काम रहता है। जब गुरु जी ही आ रहे हैं, तब यह सब जंजाल हटा कर समय को खुलासा—अरे वही, क्या कहते हैं, साफ़ करना होगा। इसी से तो मैं पोथी-पत्रा बन्द करने म—

उसे फेंकने-फाकने में—जी-जान से लगा हुआ हूँ, मरने तक की फ़ुरसत नहीं है।

संजीव–देख तो यही रहा हूँ। [प्रस्थान]

पंचक—

मैं उदास घूमता फिर रहा, सब के मुँह में तान रहा,
तेरी तरह न मन को खींचे, कोई पहचानता नहीं।

[जयोत्तम का प्रवेश]

अजी जयोत्तम, तुम यह कंधे पर काहे का बोझ लाद चले? यह बोझ फेंक दो। गुरु जी आ रहे हैं!

जयोत्तम–अरे छूना नहीं। यह सब माँगलिक सामग्री है। अच्छा हटो, रास्ता छोड़ो। मुझे इस समय अवकाश नहीं है। [प्रस्थान]

पंचक—

बज उठता है पंचम का सुर, बन्द भवन सब काँप उठे,
दरवाजा खटखटाने वाले का तो कुछ भी पता नहीं।

[महापंचक का प्रवेश]

महापं०–गाते हो! अचलायतन के भीतर गाना! तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है!

पंचक–अब तो दादा, खुद तुम को गाना पड़ेगा। एक तरफ़ से बुद्धि भ्रष्ट होने का क्रम आरम्भ हुआ है!

महापंचक–मैं—महापंचक—गाऊँगा! मेरे साथ मसख़री!

पंचक–ठट्ठा मसख़री नहीं दादा; अचलायतन में अब मन्त्र जपना बन्द होकर गाना शुरु होगा इन गूँगे पत्थरों से सुर निकलेगा। समझे!

महापं०—वह शंख बज रहा है। अब मेरे सप्तकुमारका गाथापाठ करने का समय है। मगर तुम से कहे जाता हूँ, समय न नष्ट करो। गुरु जी आ रहे हैं। (प्रस्थान)

पंचक—वह क्या है ! किसी के रोने की आवाज सुन पड़ती है। यह अवश्य सुभद्र ही है। हमारे इस अचलायतन में इधर बालक की आँखों का पानी तो किसी तरह सूखने नहीं आता। इसका रोना मुझ से नहीं सुना जाता।

[प्रस्थान और बालक सुभद्र को लेकर फिर प्रवेश]

पंचक—तुझे कोई डर नहीं है भाई, कोई डर नहीं है। तू मुझे बता दे—क्या हुआ, बता दे।

सुभद्र—मैंने पाप किया है।

पंचक—पाप किया है ? क्या पाप किया है ?

सुभद्र—यह मैं नहीं बता सकूँगा ! ऐसा-वैसा नहीं, भयानक पाप किया है। मेरी क्या गति होगी !

पंचक—तेरा सब पाप मैं अपने सिर पर ले लूँगा—तू बता दे भाई।

सुभ—मैंने अचलायतन के उत्तर ओर की—

पंचक—उत्तर ओर की ?

सुभद्र—हाँ, उत्तर ओर की खिड़की खोलकर—

पंचक—खिड़की खोलकर क्या किया ?

सुभद्र—बाहर देख लिया !

पंचक—बाहर देख लिया ? सुन कर मेरा भी मन ललचा रहा है।

सुभद्र—हाँ पंचक दादा, बाहर देख लिया। किंतु बहुत

देर नहीं—एक बार; केवल एक बार देख कर ही तुरन्त खिड़की बंद कर दी। बताओ, क्या प्रायश्चित्त करने से मेरा यह पाप दूर होगा ?

पंचक—बाहर देखने का पाप! इस पाप का क्या प्रायश्चित्त है, सो तो मैं भूल गया भाई, कुछ याद नहीं आता। प्रायश्चित्त तो एक दो नहीं, बीस-पचीस हजार तरह के हैं। मगर यदि मैं इस अचलायतन में न आता, तो उसके तीन हिस्से प्रायश्चित्त केवल पोथी ही में लिखे रह जाते। मैं जब से आया, तब से बाहर आने के लगभग सभी प्रायश्चित्तों को कार्यरूप में परिणत कर चुका हूँ; लेकिन याद एक भी नहीं रख सका। मैं बड़ा ही भुलक्कड़ हूँ भाई!

[उपाध्याय जी का प्रवेश]

सुभद्र—उपाध्याय जी—

पंचक—अरे भाग, भाग! उपाध्याय महाशय के श्रीमुख से थोड़ा-सा परमार्थ-तत्व सुनना होगा। इस समय दिक़ न कर। एक दम दौड़ लगा कर सटक-सीताराम हो जा!

उपा०—क्यों सुभद्र, क्या कहते हो? जो कुछ कहना है, वह शीघ्र कह डालो।

सुभद्र—मुझ से महा भयानक पाप हो गया है!

पंचक—चल-चल, बड़ा पंडित हो गया है न! पाप हो गया है! भाग जा!

उपा०—[उत्साहित हो कर] पाप हो गया है? [पंचक से] उसे भगाते क्यों हो जी?—सुनो सुभद्र। ठहरो! तुम ने क्या पाप किया है?

पंचक—[अर्द्ध-स्वगत] अब इसकी जान नहीं बचने की! पाप की ज़रा-सी गंध पाते ही उपाध्याय जी मक्खी की तरह लपकते हैं।

उपा०—क्या कहते थे ? पाप किया है ?

सुभद्र—जी हाँ, मैंने पाप किया है ?

उपा०—पाप किया है ? अच्छा, अच्छी बात है। तो फिर बैठ जाओ। सुनूँ तो।

सुभद्र—मैं उत्तर ओर की—

उपा०—हाँ, कहो—कहो—उत्तर ओर की दीवार में कुछ लिख दिया है ?

सुभद्र—जी नही। मैं ने उत्तर ओर की खिड़की—

उपा०—समझ गया, तुम्हारी कुहनी लग गई थी ? अच्छा तब तो उस ओर हम लोगों के जितने यज्ञ के पात्र हैं, सब फेंक दिये जायँगे, और सात महीने के बछड़े से चटाए बिना वह खिड़की भी शुद्ध न हो सकेगी।

पंचक—यह आप ग़लत कह रहे हैं। 'क्रिया-संग्रह' में लिखा है—भूकूष्मांड के डंठल से एक बार—

उपा०—तुम्हारी स्पर्द्धा तो कम नहीं देख पड़ती ! कुलदत्त के 'क्रिया-संगह' का अठारवाँ अध्याय क्या किसी दिन खोल कर देखा है तुम ने ?

पंचक—[धीरे से] सुभद्र, तू जा ! [उपाध्याय से]—किंतु कुलदत्त को तो मैं

उपा०—एं ! कुलदत्त को नहीं मानते ? अच्छा, भारद्वाज मिश्र की 'प्रयोग-विज्ञप्ति' को तो मानना ही पड़ेगा ! उसमें—

सुभद्र--उपाध्याय जी, मैंने घोर पाप कर डाला है।

पंचक—फिर ! अरे वही बात तो हो रही है। तू चुप क्यों नहीं रहता ?

उपा०—सुभद्र—उत्तर की दीवार में जो लिखा है तुमने, वह चतुष्कोण है या गोलाकार ?

सुभद्र—मैंने लकीरें नहीं खींचीं महाशय जी ! मैंने खिड़की खोलकर बाहर देख लिया।

उप०—[धम से बैठकर] आः ! सर्वनाश-सर्वनाश ! यह तूने क्या कर डाला रे ? तू जानता है, तीन सौ पैंतालीस वर्ष से यह खिड़की किसी ने नहीं खोली !

सुभद्र—[सुभद्र को छाती से लगाकर] घबराओ नहीं, रोओ नहीं। तुम्हारी जय-जयकार होगी सुभद्र ! तीन सौ पैंतालीस वर्ष की बंद जंजीर तुमने खोल दी है ! गुरु जी के आने की राह तुम्हीं ने पहले खोली !

[सुभद्र का प्रस्थान]

उपा०—न-जाने क्या सर्वनाश होने वाला है ? उतर की अधिष्ठात्री देवी एकजटा हैं, उनका क्रोध बड़ा ही कराल है ! चलूँ, आचार्यदेव को इसकी सूचना दे दूँ ! [प्रस्थान]

[आचार्य्य का प्रवेश]

आचार्य—[पंचक की पीठ पर हाथ फेरते हुए] वत्स पंचक!

पंचक—यह आपने क्या कर डाला ? मुझे छू लिया ?

आचार्य—क्यों उसमें बाधा क्या है?

पंचक—मैं आचार की रक्षा नहीं कर सका।

आचार्य—क्यों नहीं कर सके वत्स ?

पंचक—प्रभो, यह तो मैं नहीं कह सकता कि क्यों नहीं कर सका। आचार की रक्षा करना मेरी शक्ति के वाहर है।

आचार्य—सौम्य, तुम तो जानते हो, यहाँ का जो नियम है, उसी नियम को मानते हुए हज़ारों मनुष्य हजारों वर्षों से निश्चिन्त हैं। हम लोग क्या अपनी इच्छा के अनुसार उसे तोड़ सकते हैं ?

पंचक—आचार्यदेव, जो नियम सत्य है, उस को अगर तोड़ने न दिया जाय, तो उस की परीक्षा नहीं होती। क्या यही वात ठीक नहीं है ?

आचार्य—तुम क्या करते हो, क्या नहीं करते, यह मैंने किसी दिन नहीं पूछा, किन्तु आज मैं तुम से एक वात पूछूँगा। तुम क्या अचलायतन के वाहर जाकर यूनक-जाति से मिलते-जुलते हो ?

पंचक—आप क्या इसका उत्तर सुनना चाहते हैं ?

आचार्य—ना, ना, रहने दो, मत कहो। किन्तु यूनक लोग विलकुल म्लेच्छ हैं। उनके पास वैठना-उठना क्या—

पंचक—उनके सम्वन्ध में क्या आपकी कोई विशेष आज्ञा है ?

आचार्य—ना, ना, मेरी आज्ञा कुछ भी नहीं है। अगर भूल करनी हो, तो जाकर भूल करो—तुम भूल करो, हम लोगों की वात न सुनो।

पंचक—वह उपाचार्य जी आ रहे हैं। जान पड़ता है, मुझसे कोई ज़रूरी वात कहने आ रहे हैं। [प्रस्थान]

[उपाध्याय और उपाचार्य का प्रवेश]

उपाचार्य-(उपाध्याय से) आचार्यदेव से तो यह बात कहनी ही होगी। वह सुनकर बहुत उद्विग्न होंगे, मगर ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की है।

आचार्य-उपाध्याय, कोई ख़बर है क्या ?

उपाध्याय-बहुत ही बुरी ख़बर है।

आचार्य-अतएव उसे शीघ्र कह डालना उचित है।

उपाध्याय-आचार्यदेव, सुभद्र ने हमारे इस आयतन की उत्तर ओर की खिड़की खोलकर बाहर देख लिया है !

आचार्य-उत्तर की ओर का स्थान तो एकजटा देवी का है।

उपाध्याय-यही तो चिन्ता की बात है। कह नहीं सकते हमारे आयतन की मन्त्रपूत, रुकी हुई वायु पर वहाँ की वायु ने कहाँ तक कितना आक्रमण किया है।

उपाध्याय-अब प्रश्न यह है कि इस पाप का प्रायश्चित क्या है।

आचार्य-मुझे भी तो याद नहीं आता। शायद उपाध्याय—

उपा०-ना, मुझे भी तो याद नहीं आता। आज तीन सौ वर्ष से इस प्रायश्चित्त की ज़रूरत ही नहीं हुई—सभी भूल गए हैं।—यह लो, महापंचक आ रहा है। अगर किसी को याद होगा, तो बस इसी को। [महापंचक का प्रवेश।]

उपा०-जान पड़ता है, तुम सब सुन चुके हो।

महापंचक-उसी के लिए तो आया हूँ। इस समय हम सब अपवित्र हैं; बाहर की हवा हमारे आयतन में प्रवेश कर चुकी है। उपाचार्य, हम लोगों में से किसी को स्मरण नहीं कि इसका

प्रायश्चित्त क्या है। तुम्हीं शायद बतला सकते हो।

महापंचक–'क्रिया-कल्पतरु' में इस का कोई उल्लेख नहीं मिलता। एकमात्र भगवान् ज्वलनानंतकृत 'आधिकर्मिक वर्षायण' में लिखा है कि इस अपराध के अपराधी को छः महीने महातामस की साधना करनी होगी।

उपाचार्य–महातामस की ?

महापंचक–हाँ ! उसे अंधकार में बन्द कर देना होगा। वह प्रकाश की एक किरण भी न देखने पावेगा। कारण, प्रकाश के द्वारा होने वाले अपराध का प्रक्षालन अंधकार ही के द्वारा हो सकता है।

उपाचार्य–अच्छा तो महापंचक, इस का भार तुम्हारे ही ऊपर रहा।

उपाध्याय–चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। तब तक सुभद्र को ले जाकर हिंदूमर्दन-कुण्ड में स्नान करा लाऊँ।

आचार्य–सुनो, इसका प्रयोजन नहीं है।

उपाध्याय–काहे का प्रयोजन नहीं है ?

आचार्य–इसी प्रायश्चित्त का।

महापंचक–प्रयोजन नहीं है ? यह आप क्या कहते हैं ? आधिकर्मिक वर्षायण खोलकर मैं अभी दिखाए देता हूँ–

आचार्य–उसकी जरूरत नहीं है ? सुभद्र को कोई भी प्रायश्चित्त न करना होगा। मैं आशीर्वाद देकर उसका–

महापंचक–यह भी क्या कभी संभव हो सकता है ? जो किसी भी शास्त्र में नहीं है, आप क्या वही–

आचार्य–ना, मैं होने दूँगा। अगर इस से कुछ अपराध

होगा, तो वह मैं अपने सिर पर ले लूँगा। तुम लोगों को कुछ भय नहीं है।

उपा०—इस तरह की कमज़ोरी तो आप में मैंने किसी दिन नहीं देखी। अभी उस दिन अष्टाँगशुद्धि-उपवास करते समय तीसरे दिन रात को बालक कुशलशील 'जल-जल' की रट लगाता हुआ प्यास के मारे मर गया; लेकिन तो भी उसके मुँह में एक बूँद पानी नहीं डाला गया! उस समय तो आपने कुछ नहीं कहा, चुप रहे। तुच्छ मनुष्य के प्राण आज हैं, कल नहीं; किन्तु सनातन धर्म-विधि तो सदा रहेगी। उसका व्यतिक्रम कैसे हो सकता है?

[सुभद्र को लेकर पंचक का प्रवेश]।

पंचक—भय नहीं है सुभद्र, तू डर नहीं। तेरे लिये भय की कोई बात नहीं है!—इस बालक को अभय दीजिए हे प्रभो!

आचार्य—वत्स, तुमने कोई पाप नहीं किया। पुत्र, जो लोग विना अपराध के तुमको हज़ारों वर्ष से मुँह बना-बना कर भय दिखा रहे हैं, पाप उन्हीं का है, अपराधी वही हैं:—

आओ पंचक।

[सुभद्र को लेकर पंचक का प्रस्थान]।

उपाचार्य—आचार्यदेव, निवृत्त होइए, जाने दीजिए।

[प्रस्थान]

महापंचक—हम लोग अपवित्र होकर रहेंगे? हमारे याग-यज्ञ, व्रत-उपवास आदि सभी अनुष्ठान भरभण्ड हो गए और होंगे! यह सहन करना तो कठिन है!

उपा०—यह किसी तरह सहन किया ही नहीं जा सकता।

इस तरह काम ही नहीं चल सकता। आचार्यदेव क्या अन्त को हमें म्लेच्छों के समान कर देना चाहते हैं ?

महापं०—वह आज सभद्र की रक्षा करने में सनातन धर्म का विनाश कर देंगे। उनकी वुद्धि में एकाएक क्या विकार पैदा हो गया ? इस अवस्था में उनको आचार्य मानना ही पाप है। वह किसी तरह आचार्य नहीं माने जा सकते।

[संजीव, विश्वंभर, जयोत्तम और अध्येता का प्रवेश]

उपाध्याय—क्यों जी अध्येता, क्या मामला है ?

अध्येता—सुभद्र को महातामस में विठलाये, इतनी मजाल किसकी है ?

महापं०—कुछ भी हो, सब विघ्न हटा कर यह काम तो करना ही होगा।

अध्येता—मूर्तिमान विघ्न तो तुम्हारा भाई ही मौजूद है।

महापं०—कौन, पंचक ?

अध्येता—जी हाँ, मेरे पुकारते ही सुभद्र तो दौड़ा आया था, लेकिन पंचक आकर उसे खींच ले गया।

महापं०—ना, इस नराधम को तरह देने से अब काम नहीं चलेगा। मैंने वहुत सहा, वहुत तरह दी। अब के उसे निर्वासन का दण्ड देना निश्चित और ठीक है।—किन्तु अध्येता, तुम ने यह कैसे सहन कर लिया ?

अध्येता—मैं क्या तुम्हारे पंचक से डरता हूँ ? स्वयं आचार्य अदीनपुण्य ने आकर उसको ऐसा करने की आज्ञा दी, तभी तो उसको इतना साहस हुआ।

संजीव—स्वयं हम लोगों के आचार्य ने !

महापं०—मैं कहता हूँ, उनको दवा कर के रखना होगा।

संजीव—किस तरह ?

महापं०—किस तरह और क्या ? मस्त हाथी को जिस तरह काबू में किया जाता है, उस तरह।

जयोत्तम—तो क्या अपने आचार्य देव को—

महापं०—हाँ-जी-हाँ, उन्हें पकड़ कर बन्द कर रखना होगा। चुप क्यों हो गए जी। क्या यह न कर सकोगे ?

[आचार्य का प्रवेश]

आचार्य—वत्स, इतने दिन तक तुमने मुझे आचार्य करके माना है, मगर आज तुम लोगों के आगे मेरे विचार का समय उपस्थित है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरा अपराध अपार है, अनन्त है और उसका प्रायश्चित मुझी को करना होगा।

संजीव—तो फिर अब आप और देर क्यों करते हैं ? इधर तो हम लोगों का सर्वनाश हुआ जा रहा है !

आचार्य—गुरुदेव चले गए, हम लोग उन की जगह पर पोथी लेकर बैठे। उसी जीर्ण पुस्तक-भण्डार में प्रतिदिन मेरे आगे अपना तरुण हृदय खोल कर, रख कर, दल-के-दल तुम लोग क्या माँगने आए थे ? अमृत-वाणी ? किन्तु मेरा तालू तो सूख कर काठ हो गया है। पुत्रो ! रसना में रस का लेश भी नहीं है ! अब ले आओ वही वाणी गुरुदेव, ले आओ हृदय की वही वाणी ! हृदय को हृदय से जगा जाओ ! प्राणों को प्राण दे कर सचेत करदो !

[पंचक दौड़ता हुआ प्रवेश करता है]

पंचक—तुम्हारी नई वर्षा की सजल हवा में उड़ जायँ सब सूखे पते—आओ रे नव किसलय दल—तुम दौड़े आओ, और फूट निकलो!—भाई जयोत्तम, सुनते नहीं, आकाश के इस घने नीले मेघ के बीच मुक्ति की पुकार सुन पड़ रही है—नृत्य करो, नृत्य करो!

गीत।

आ हा हा हा, ओ हो हो हो, मुक्त हुआ मन मस्त हुआ,
कौन रोक सकता अब उसको, लज्जा-भय सब अस्त हुआ।
उसने तो आकाश-ओर को अपना हाथ बढ़ाया है,
कौन खींच सकता है उसको, महामोह विध्वस्त हुआ।
आ हा हा हा, ओ हो हो हो० ॥

[पहले जयोत्तम, फिर विश्वम्भर और फिर संजीव भी नाचने गाने लगता है]

महापंचकक—अरे पंचक, निर्लज्ज, वन्दर कहीं के! ठहर-ठहर!

पंचक—

गीत।

आ हा हा हा, ओ हो हो हो, मुक्त हुआ मन मस्त हुआ,
कौन रोक सकता अब उसको, लज्जा भय सब अस्त हुआ।

महापं०—मैंने तुमसे कहा नहीं था कि उपाध्याय एकजटा देवी का शाप फलना आरम्भ हो गया है? देखते हो, किस तरह वह हम सब लोगों की बुद्धि को विचलित किए दे रही हैं। क्रमशः देखोगे अचलायतन का एक पत्थर भी यहाँ न रह जायगा।

पंचक—ना, नहीं रहेगा, अवश्य नहीं रहेगा। पत्थर सब

पागल हो जायँगे। वे सब इधर-उधर भाग खड़े होंगे। वे गाना शुरु करेंगे—

नाचो, नाचो, नाचो भैया, खूब मज़े से नाचो जी;

छुटकारा मिल गया, बुद्धि का बन्धन अस्त-व्यत हुआ।

आ हा हा हा, ओ हो हो हो०।

महापंचक—उपाध्याय, मुँह बाए खड़े देख क्या रहे हो—तुम्हारी समझ में नहीं आता क्या—सर्वनाश शुरु हो गया, सर्वनाश! अरे ओ मूर्ख, वर्वर, अभिशप्त बालकगण, आज क्या इस तरह तुम्हारे नाचने और गाने का दिन है?

पंचक—सर्वनाश! का बाजा बजते ही नाच-गाना शुरु हो जाता है दादा!

महापंचक—चुप रह अभागे!—अरे विद्यार्थियो, तुम अपने को न भूल, याद रक्खो, घोर विपत्ति तुम्हारे सिर पर है।

विश्वम्भर—आचार्यदेव, मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, सुभद्र को हम लोगों के हाथ में दे दीजिए, उसे प्रायश्चित करने से न रोकिए।

आचार्य—ना, वत्स, ऐसा अनुरोध न करो। सुभद्र को तुम्हें न सौंप सकूँगा।

विश्वम्भर—नहीं दीजिएगा?

आचार्य—ना।

महापंचक—जो फिर अब सोच-विचार करना या दुविधा में पड़ना ठीक नहीं!—विश्वम्भर, अब तुम लोगों को उचित है कि इन्हें ज़बरदस्ती पकड़ ले जाकर कोठरी में बन्द कर दो। कायरो! तुम में से क्या किसी को साहस नहीं होता? तो क्या

मुझी को अपने हाथों से यह काम करना पड़ेगा, मुझी को कर्त्तव्य-पालन में अग्रसर होना पड़ेगा ?

जयोत्तम—खबरदार, आचार्यदेव के शरीर में कोई हाथ नहीं लगा सकेगा !

विश्वम्भर—ना, ना, महापंचक, उन का अपमान होते हम देख नहीं सकते—उनका अपमान हम किसी तरह न होने देंगे !

संजीव—हम सब मिलकर, पैर पकड़ कर उन्हें राज़ी करेंगे। एक सुभद्र पर दया करके क्या वह हम सबका अमंगल होने देंगे ? कदापि नहीं।

विश्वम्भर—इस अचलायतन के ऐसे कितने ही बच्चे उपवास करके स्वर्ग सिधार गये हैं—उससे क्या क्षति हुई है !

[सुभद्र का प्रवेश]

सुभद्र—मुझ से महातामस-व्रत कराओ। मैं तैयार हूँ।

पंचक—तू ने सर्वनाश कर डाला ! तुझे निद्रित देखकर ही मैं चला आया था। तू कब जागकर यहाँ चला आया !

आचार्य—वत्स सुभद्र, आओ मेरी गोद में। जिसे पाप समझकर तुम डर रहे हो, वह पाप मेरा है, मैं प्रायश्चित्त करूँगा।

विश्वं०—ना, ना, आओ भैया सुभद्र, आओ। तुम मनुष्य नहीं देवता हो !

संजीव—तू भाई, धन्य है !

विश्वं०—तेरी जितनी अवस्था में महातामस-व्रत करने का सौभाग्य और किसी को नहीं प्राप्त हुआ। तेरी माँ का तुझे गर्भ में धारण करना आज सार्थक हो गया।

उपाध्याय–आहा सुभद्र, तू निस्संदेह हमारे अचलायतन का गौरव बढ़ाने वाला बालक है।

महापंचक–आचार्यदेव, अब भी क्या आप ज़बरदस्ती करके इस बालक को इस महापुण्य से वंचित रखना चाहते हैं ?

आचार्य–हाय-हाय ! यही देखकर तो मेरा हृदय फटा जा रहा है। तुम लोग अगर इसे रुलाकर मेरे हाथ से छीन ले जाते, तो भी मुझे इतनी वेदना न होती।

पंचक–सुभद्र, आओ भाई, चलो, प्रायश्चित करने चलें—मैं भी चलूँगा तुम्हारे साथ।

आचार्य–वत्स, मैं भी चलूँगा।

सुभद्र–ना, ना, मुझे वहाँ अकेले ही रहना होगा। किसी के साथ रहने से पाप होगा !

महापंचक–धन्य हो तुम बच्चे ! तुम ने आज अपने इन वृद्ध आचार्य को भी शिक्षा दी है ! आओ मेरे साथ।

आचार्य–ना। मैं मना करता हूँ !—सुभद्र, अपने आचार्य की आज्ञा अन्यथा न करो। आओ पंचक, इसे गोद में करके ले आओ।

[सुभद्र को लेकर पंचक, आचार्य और उपाध्याय का प्रस्थान]

महापंचक–धिक्कार है ! तुम-जैसे कायर की दुर्गति से रक्षा करने की शक्ति किसी में नहीं है। तुम लोग आप मरोगे, और सब को भी मारोगे। तुम लोगों के उपाध्याय भी वैसे ही आ जुटे हैं—उनकी भी सूरत फिर नहीं देख पड़ी।

[पादातिक का प्रवेश]

पादातिक—स्थविरपत्तन के महाराज आ रहे हैं।

महापंचक—मामला क्या है ! यह तो हम लोगों के राजा मंथुरगुप्त हैं !

[राजा का प्रवेश]

राजा—सब नरदेवों को नमस्कार।

सब—जय हो आप की राजन्।

महापंचक—कुशल तो है सब ?

राजा—बहुत ही बुरी खबर है। प्रत्यंत देश के दूतों ने आकर खबर दी है कि दादा ठाकुर का दल हम लोगों के राज्य की सीमा के पास पहुँच गया है, और उसने वहीं डेरा डाल दिया है।

महापं०—दादा ठाकुर का दल कौन ? उसमें कौन लोग हैं ?

राजा—ये ही यूनक लोग।

महापं०—यूनक लोगों ने अगर एक बार हमारी चहार-दीवारी को तोड़ डाला, तो फिर वे सब तहस-नहस कर देंगे !

राजा—इसी लिये तो दौड़ा-दौड़ा आया हूँ ! चंडक ने कहा कि एक यूनक हम लोगों के स्थविरक-संप्रदाय का मंत्र पाने के लिये गुप्त-रूप से तपस्या कर रहा था। मैंने खबर पाते ही उसका सिर काट डाला।

महापंचक—यह आपने अच्छा ही किया। किंतु इधर हम लोगों के अचलायतन में ही जिस पाप ने प्रवेश किया है, उसका क्या प्रतिकार आप ने किया ? हम लोगों की हार में अब और देर क्या है ?

राजा—यह क्या बात आपने कही ? मैं नहीं समझा।

संजीव—आयतन को एकजटा देवी का शाप लग गया है।

राजा—एें ! एकजटादेवी का शाप ! सर्वनाश हो गया !

उनके शाप का क्या कारण हुआ ?

महापं०—यह तो आप जानते ही हैं कि अचलायतन के उत्तर-भाग में उनका अधिष्ठान है। यहाँ एक दिन उस तरफ़ की खिड़की खोल डाली गई।

राजा—[निराशभाव से बैठ कर] तब तो अब कुछ भी आशा नहीं है !

महापं०—आचार्य अदीनपुण्य इस पातक का प्रायश्चित्त नहीं करने देते।

विश्वंभर—वह जबरदस्ती हम लोगों को रोके हुए हैं।

राजा—करो-करो, अदीनपुण्य को अभी निर्वासित करो !

महापंचक—मगर समस्या तो यह है कि आचार्य कौन होगा ?

राजा—तुम-तुम ! अभी मैं तुमको आचार्य के पद पर बिठलाता हूँ। दिक्पाल साक्षी हैं—ये सब ब्रह्मचारी साक्षी हैं !

महापंचक—अच्छा, तो आप अदीनपुण्य को कहाँ निर्वासित करना चाहते हैं !

राजा—आयतन के बाहर नहीं। क्या जानें, कहीं यूनक लोगों के साथ मिल जायँ, तो बड़ा ही अनर्थ होगा। आयतन के किनारे वह जो अन्त्यजों का दर्भकालय है, उसी में उनको बंद कर रक्खो।

[दूत का प्रवेश]

दूत—खबर मिली है कि गुरुदेव बहुत निकट आगए।

राजा—किसने कहा ?

दूत—चारों ओर यह ख़बर सुनाई दे रही है।

राजा— तब तो उनकी अभ्यर्थना का आयोजन करना होगा। —महापंचक, तुम अचलायतन के सब द्वार और खिड़कियाँ बंद करके सबसे शुद्धि-मंत्र का जप कराते रहो।

[राजा का प्रस्थान]

महापं०—पंचक कहाँ है ?

जयोत्तम—सुना है, वह दीवार फाँद कर यूनक लोगों के पास चला गया।

महापंचक—वह नालायक़ अब फिर इस आयतन के भीतर न आने पावे। गुरुदेव के आने के पहले ही यहाँ का सब उपद्रव दूर करना चाहिए। अजी ओ ब्रह्मचारी लोगो, तुम सब मंत्र-पाठ के लिये स्नान करके तैयार हो आओ।

[सब का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—पहाड़, जंगल

पंचक अकेला

पंचक—[गाता है]

गीत—

कहाँ गई यह राह, कौन यह जान सके भाई।
किस पहाड़ की चोटी-ऊपर,
किस सागर के सुंदर तट पर,
कौन दुराशा के वन-भीतर

जाकर हो आई,
कौन यह जान सके भाई।
आता-जाता कौन इधर है,
देव, नाग, किन्नर, या नर है,
है कुरूप, या वह सुन्दर है,
ख़बर न कुछ पाई,
कौन यह जान सके भाई।
होगी कैसी उसकी बोली,
कैसी हँसी हँसे वह भोली,
किसे ढूंढते हेत ठठोली,
उनके मन भाई;
कौन यह जान सके भाई।

[पीछे से आकर यूनक-दल के लोग नाचते हैं]

पंचक—यह क्या है रे! तुम लोग कब पीछे आकर नाचने लगे?

१ यूनक—हम लोग नाचने का सुयोग पाते ही नाचने लगते हैं, अपने दोनों पैरों को स्थिर नहीं रख सकते, वे थिरकने ही लगते हैं।

२ यूनक—आओ भाइयो, इसको कंधे पर चढ़ा कर नाचें।

पंचक—अरे ना-ना, मुझे छूना नहीं, छूना-नहीं!

३ यूनक—अरे-अरे! इसके ऊपर अचलायतन का भूत सवार है! यह यूनकों को नहीं छुएगा।

पंचक—तुम लोग जानते हो, हम लोगों के गुरुदेव आने वाले हैं?

१ यूनक—सच कहते हो! अच्छा वह किस तरह के आदमी हैं? उनमें कोई नई बात है क्या?

पंचक—नई बात भी है, पुरानी भी है।

२ यूनक—अच्छा, उनके आने पर खबर देना—ज़रा उन्हें हम देखेंगे।

पंचक—तुम लोग देखोगे क्या रे! सर्वनाश! वह तो यूनकों के गुरु नहीं हैं। उनकी बात कहीं तुम्हारे कानों में एक अक्षर भी न चली जाय, इसी लिये तो तुम्हारी तरफ़ की दीवार के बाहर राज-सेना की सात पंक्तियाँ पहरा देंगी। तुम्हारे भी तो गुरु हैं—उन्हीं के—

३ यूनक—गुरु! हमारे और गुरु कहाँ हैं! हम तो आप हैं दादा ठाकुर। अब तक तो हमने किसी गुरु को नहीं माना।

१ यूनक—इसी लिये देखने को हमारा जी चाहता है कि यह गुरु पदार्थ कैसा है।

२ यूनक—हम लोगों में एक आदमी है, उसका नाम है चंडक। उसे न-जाने क्यों भारी लोभ हो आया है। उसने सोचा है कि तुम लोगों के किसी गुरु से मंत्र लेकर वह न जाने कौन एक अत्यंत अद्‌भुत फल पावेगा। इसी से वह छिप कर चला गया है।

पंचक—अरे ओरे! तुम लोग सभी तरह के काम जो करते हो, यही तुम में बड़ा दोष है! तुम लोग खेती तो करते हो न?

१ यूनक—करते क्यों नहीं, खूब करते हैं! पृथ्वी पर हम ने जन्म लिया है, यह बात पृथ्वी को अच्छी तरह समझा कर तब छोड़ते हैं!

पंचक–अच्छा, न हो, तुम्हारा खेती करना किसी तरह सह भी लिया जाता, किन्तु, कोई कहता था, तुम लोग मटर की खेती करते हो। क्या यह सच है ?

१ यूनक–करते क्यों नहीं, बेशक करते हैं।

पंचक–मटर की खेती ! छिः—छिः ! जान पड़ता है, तुम मसूर की खेती भी करते हो—क्यों ?

३ यूनक—क्यों न करें ? हमारे ही यहाँ से तो मटर और मसूर तुम्हारे बाज़ार में जाती हैं।

पंचक–हाँ, सो तो जाती हैं, लेकिन तुम जानते हो, जो लोग इनकी खेती करते हैं, उन्हें हम अपने घरों में घुसने नहीं देते, अपने पास बैठने नहीं देते, उनका स्पर्श नहीं करते !

१ यूनक–यह क्यों ?

पंचक–क्यों क्या रे ? वह मना है।

१ यूनक–क्यों मना है ?

पंचक–सुनो इसकी बातें ! मना है, बस—उस में फिर क्यों क्या ! यों ही हम लोग तुम्हारा मुँह देखने में पाप मानते हैं, यह सहज बात तुम्हारी समझ में नहीं आती कि मटर और मसूर की खेती करना महापाप है—बहुत बुरा है !

२ यूनक–यह क्यों ? इन चीज़ों को क्या तुम लोग नहीं खाते ?

पंचक–खाते क्यों नहीं हैं, खूब शौक से खाते हैं—[हाँ, केवल मसूर की दाल को कुछ लोग चुरा-छिपा कर खाते हैं]—मगर खाते हैं, तो क्या हुआ, जो लोग इनकी खेती करते हैं, उनकी छांह भी हम नहीं छूते।

२ यूनक–यह क्यों ? इस का कारण ?

पंचक–फिर वही 'क्यों'! मैं न जानता था कि तुम लोग इतने बड़े वज्र मूर्ख हो। अरे हमारे पितामह विष्कंभी बाबा ने मटर के भीतर से ही जन्म लिया था—समझे ?

२ यूनक–मटर के भीतर क्यों जन्म लिया ?

पंचक–फिर वही 'क्यों' ? तुम लोगों ने तो 'क्यों-क्यों' कर के मुझे परेशान कर डाला !

३ यूनक–अच्छा, मसूर की क्यों मनाही है ?

पंचक–एक बार किसी युग में एक मसूर की दाल व्रत के दिन किसी बहुत बूढ़े आदमी की ठीक मूछों के ऊपर उड़ कर गिर पड़ी थी; उस के कारण बुड्ढे के व्रत का पुण्य-फल साठ-सहस्र भाग का शतांश कम हो गया था। इसी कारण उसी समय उस वृद्ध ने खड़े हो कर काँपते-काँपते जगत्-भर के मसूर के खेतों को शाप दे दिया था। इतना तेज़ था! तुम होते तो क्या करते, बतलाओ तो भला !

१ यूनक–हमारी क्या पूछते हो! व्रत के दिन अगर हमारी मूछों पर मसूर की दाल उड़ कर आवे, तो हम उसे खुशी से ओठों के भीतर जगह दे दें।

पंचक–अच्छा, नाई हजामत बनाने के समय जिस दिन तुम्हारे बाएँ गाल में रक्त निकाल देता है, उस दिन तुम क्या करते हो ?

२ यूनक–उस दिन नाई के दोनों गालों में कस कर थप्पड़ जमा देते हैं, और क्या करते हैं ?

पंचक–नहीं-जी-नहीं, मैं कहता हूँ, उस दिन नदी पार

होने की आवश्यकता होने से तुम लोग नाव पर चढ़ सकते हो ?

२ यूनक–खूब चढ़ सकते हैं।

पंचक–अरे तुम लोगों ने तो मेरे नाक में दम कर दिया! मुझ से अब रहा नहीं जाता! तुम लोगों से अब प्रश्न करने का साहस नहीं होता। इसी तरह का और एक उत्तर अगर सुन पाऊँगा, तो तुम लोगों को छाती से लगा कर पागल की तरह नाचने लगूँगा; मेरी जाति, मेरा मान, कुछ भी नहीं रह जायगा। भाइयो, तुम क्या सभी काम कर सकते हो ? तुम्हारे दादा ठाकुर क्या किसी भी काम के लिये तुम को मना नहीं करते ?

[यूनक लोगों का गाना]।

गीत

बंद नहीं हैं किसी काम में, सभी काम हम करते हैं;
बाधा, बंधन, विधि-निषेध या, नहीं किसी को डरते हैं ।।बंद०।।
देखें, खोजें, समझें-बूझें,
तोड़ें और गढ़ें या जूझें,
सब देशों में सभी साज सज सुखी सदैव विचरते हैं ।।बंद०।।
जीतेंगे अथवा हारेंगे,
मर जावेंगे या मारेंगे,
यों हीं नहीं हताश हारकर पड़े खाट पर मरते हैं ।।बंद०।।
अपने हाथों, अपने बल पर,
रचना, सृष्टि स्वतंत्र स्वयं कर
जान लड़ा कर घर जो बाँधें, वास उसी में करते हैं ।।बंद०।।

पंचक–सर्वनाश कर डाला मेरा ! अनर्थ कर डाला ! अब मैं अपनी कुलीनता, शराफ़त और भद्रता से मुँह मोड़ता हूँ—विवश हो रहा हूँ—क्या करूँ ? इनकी बातें और गीत सुन-सुन कर मेरा मन डावाँडोल हो रहा है। मेरे भी पैर इन की ताल में ताल मिला कर थिरकने के लिये मचल रहे हैं ! देखता हूँ, ये नीच मुझे भी अपने दल में खींचे लेते हैं ! किसी दिन मैं भी इनके साथ लोहा पीटूँगा, हथौड़ा चलाऊँगा—मगर मसूर की दाल–ना, ना, भाग जाओ ! देखते नहीं, मैं पढ़ने के लिये पोथियों का गट्ठर बाँध लाया हूँ।

[यूनकों के एक और दल का प्रवेश]

१ यूनक–दादा ठाकुर !

दादा ठाकुर–क्या है रे !

२ यूनक–दादा ठाकुर !

दादा०–क्या चाहिये रे ! कहता क्यों नहीं ?

३ यूनक–कुछ न चाहिये–जी चाहा, एक बार तुम को पुकार लूँ !

पंचक–दादा ठाकुर !

दादा०–क्या है भैया पंचक ?

पंचक–ये सब तुम को पुकार रहे हैं, न-जाने क्यों, मेरा भी जी चाहा कि तुम को पुकारूँ। जितना सोचता हुँ कि इन से अलग रहूँ, उतना ही इस दल की दल-दल में और धंसता जाता हूँ !

१ यूनक–हमारे दादा ठाकुर का अलग दल कैसा ! वह तो हमारे सब दलों के शतदल कमल हैं, कमल !

पंचक—ओ भैया, अपने दादा ठाकुर के साथ तुम लोग दिन रात हुरदंगा करते हो तो किया करो, करो। खूब करो। मगर इस समय ज़रा इनको छोड़ दो, मैं इन से एकान्त में बैठ कुछ बातें करूँगा। डरना नहीं, डरने की कोई बात नहीं है—इन्हें अपने अचलायतन में ले जा कर ताले-कुँजी के भीतर नहीं बंद करूँगा।

१ यूनक—ले न जाओ! यह तो अच्छा ही होगा। तब तो ताले-कुँजी के बाप की मजाल नहीं कि इन्हें रोक रक्खे। इन के जाने पर तुम्हारे अचलायतन के पत्थर तक नाचने लगेंगे; पोथियाँ वंशी बजाने लगेंगी।

पंचक—दादा ठाकुर, सुनता हूँ, हमारे गुरुदेव आ रहे हैं।

दादा०—कैसी आफ़त है! तब तो भारी उत्पात होगा।

पंचक—अरे थोड़ा-बहुत उत्पात हो, तब तो मेरी जान में जान आ जाय। चुपचाप रहते-रहते तो जैसा दम घुटने लगा है।

दादा०—अच्छा, तुम्हारे गुरु जब आवेंगे, तब उन्हें देख लिया जायगा; अभी तुम अपना हाल कहो, तुम कैसे हो?

पंचक—भयानक खींचतान के बीच में पड़ा हूँ दादा! मन-ही-मन प्रार्थना करता हूँ कि गुरु देव आ कर एक तरफ़ मेरा स्थान निश्चित कर दें। या तो यहाँ की खुली हवा में अभयदान पूर्वक मुझे मुक्त कर दें, और या खूब कस कर पोथियों के नीचे दबा दें, जिस से मैं सिर से पैर तक एकदम बराबर चपटा हो जाऊँ!

[यूनकों का एक और दल प्रवेश करता है]

दादा०–क्यों रे, इतने घबराए-से क्यों दौड़े आ रहे हो ?

१ यूनक–चंडक को जान से मार डाला दादा !

दादा०–किस ने मार डाला ?

२ यूनक–स्थविरपत्तन के राजा ने ।

पंचक–हमारे राजा ने ? क्यों; उन्होने क्यों मार डाला ?

२ यूनक–चंडक 'स्थविरक' होने के लिये वन में एक खंडहर मंदिर के बीच बैठा तप कर रहा था ! उधर के राजा मंथरगुप्त ने यह ख़बर पाते ही, जा कर उसका सिर काट डाला ।

३ यूनक–पहले उन लोगों के देश की दीवार पैंतीस ऊँची थी, अब उस को अस्सी हाथ ऊँचा करने के लिये लोग लगा दिए गए हैं । उन लोगों को डर है कि कहीं संसार-भर के आदमी दीवार फाँद कर एकाएक स्थविरक न हो उठें ।

४ यूनक–हमारे देश से दस और यूनकों को वे लोग पकड़ ले गए हैं, हज़ार विस्वे कालकुमारी देवी के आगे उनकी बलि दी जायगी ।

दादा०–तो फिर चलो ।

१ यूनक–कहाँ ?

दादा०–स्थविरपत्तन में ।

२ यूनक–क्या अभी ?

दादा०–हाँ अभी ।

सब–अरे चलो रे चलो, अभी चलो !

दादा० –हमारे राजा का आदेश है कि जब उनके पाप

दीवार के रूप में ऊँचे हो कर आकाश की ज्योति को ढकने के लिये उठेंगे, तब वह दीवार गिरा देनी होगी।

१ यूनक–गिरा देनी होगी–हम गिरा देंगे।

सब–हाँ, हम गिरा देंगे।

दादा ठाकुर–उन लोगों की उसी टूटी दीवार के ऊपर हम लोग राजमार्ग तैयार करेंगे।

सब–हाँ, राजमार्ग तैयार करेंगे।

दादा०–उसी राजमार्ग पर हमारे राजा का विजय-रथ चलेगा।

सब–हाँ, विजय-रथ चलेगा।

पंचक–दादा ठाकुर यह क्या मामल है ?

१ यूनक–चलो पंचक, तुम भी चलो।

दादा०–ना-ना-ना, जाओ भैया पंचक, तुम अपने अचलायतन में लौट जाओ। जब समय होगा, तब फिर भेंट होगी।

पंचक–मुझे मालूम है कि मैं किसी काम का नहीं हूँ। फिर भी न-जाने क्यों मेरा यही जी चाहता है दादा ठाकुर कि तुम लोगो के साथ ही मैं भी निकल खड़ा होऊँ।

दादा०–नहीं जी पंचक, तुम्हारे गुरु आवेंगे, तुम जा कर उनकी अपेक्षा करो।

[प्रस्थान]

तीसरा दृश्य

स्थान—दर्भक-पल्ली।

आचार्य, पंचक और दर्भकदल

पंचक—निकाल दिया गया, मैं निकाल दिया गया। यह दंड नहीं, मुझ पर बड़ा एहसान किया गया। मेरी जान बची। गुरुदेव के आने के पहले ही उनका काम शुरू हो गया है।

१ दर्भक—तुम को खाने के लिये क्या दें ठाकुर?

पंचक—तुम्हारे यहाँ जो है, वही मैं खाऊँगा।

२ दर्भक—हमारे खाने की सामग्री आप खाइएगा? यह भी कहीं हो सकता हैं? वह सब सामान तो हमारा छुआ हुआ है!

पंचक—उस के लिये कुछ चिंता न करो भाई। पेट में भूख की जो आग जलती है, वह किसी के छूने की छूत नहीं मानती, वह सभी चीज़ों को पवित्र कर लेती है। अच्छा प्रातःकाल तुम लोग क्या करते हो, बताओ तो सही।

१ दर्भक—हम शास्त्र तो जानते नहीं हैं, इसीसे भगवान् का नाम लेते और उन्हीं का भजन करते हैं!

पंचक—कैसे भजन करते हो, ज़रा सुनाओ तो।

दर्भक—तुम सुन कर हँसोगे महाराज!

पंचक—इतने दिन तक तो मैं ही भाई लोगों को हँसाता रहा हूँ—आज तुम लोग मुझे भी हँसाओगे—मुझे तो यह सुन कर ही बड़ी प्रसन्नता हो रही है! तुम कुछ चिंता न करो, निर्भय हो कर सुना दो।

१ दर्भक—अच्छा भाइयो, आओ फिर भगवान् का भजन

करके इन्हें सुना दें ।–(गाते हैं ।)

गीत

दयामय, दुखियन के भगवान,
तुम अथाह में थाह, अगति की गति; भगतन के प्रान।
हे अनाथ के नाथ, तुम्हारो को करि सकै बखान ?
तुम प्रकाश इन नयनन के हो, रस रसना को ठीक;
हो अनमोल रतन को हरवा हरि, हिरदै बिच नीक ।
दीनबंधु, अपरूप रूप तुम, मधुर मनोहर बैन;
बिथा मरम की, चरम परम सुख, धरम-करम दिन-रैन।
तुम निरधन के धन जन रंजन, अनबोलन के बोल,
तुम ही गोद मृत्यु की, तुम ही जनमत के हिंडोल ।
प्रभो, पतित-पति, रोम-रोम तुम रमे रमापति राम;
देहु किंकरन सरन चरन की, लेहि तुम्हारौ नाम।

पंचक—दो भाई, मेरा सब मंत्र-तंत्र भुला दो, मेरी विद्या और ज्ञान सब छीन लो, मुझे अपना यह सुन्दर भजन सिखा दो !

१ दर्भक—(आचार्य से) महाराज, आज हमारी यह बस्ती धन्य हो गई—पवित्र हो गई ! आज तक कभी आपके चरणों की रज नहीं पड़ी थी – आज यहाँ की धरती के भाग खुल गए !

आचार्य—अरे भाई, वह मेरा ही अभाग्य था—मेरा ही अभाग्य था !

२ दर्भक—महाराज, आपके नहाने के लिये पानी किससे भरवाया जाय ? यहाँ तो—

आचार्य—पुत्रो, तुम्हीं लोग भर लाना।

१ दर्भक—हम भर लावेंगे !—भला, यह भी कहीं हो सकता है !

आचार्य—हाँ पुत्रो, हो सकता है, और होगा । तुम्हारे भरे पानी से आज मेरा फिर से अभिषेक होगा ।

२ दर्भक—अरे भाइयो, चलो-चलो, अपनी पाटला-नदी से महाराज के लिये जल ले आवें। आहा ! आज हमारा कैसा सौभाग्य है ! चलो-चलो !

[प्रस्थान]

पंचक—जान पड़ता है, कहीं पानी बरस रहा है—भीगी मिट्टी की सुगंध आ रही है ।

आचार्य—तुमको सुनाई पड़ता है पंचक ?

पंचक—क्या ?

आचार्य—मुझे जान पड़ता है, जैसे सुभद्र रो रहा है ।

पंचक—यहाँ से क्या उसका रोना सुनाई पड़ सकता है ? जान पड़ता है यह और कोई शब्द है ।

आचार्य—ऐसा ही होगा पंचक; मगर मैं उसका रोना अपने हृदय में लेकर यहाँ आया हूँ। उसका रोना इस तरह मुझे क्यों व्यथित कर रहा है, जानते हो पंचक ? उसका रोना समाप्त होना नहीं चाहता—उसका रोना अनंत है, अथाह है, अपार है । तो भी वह किसी तरह नहीं मानता, रोता है—और केवल रोता है !

[दर्भकों के एक दल का प्रवेश]

पंचक—क्यों भाई, तुम लोग इतने घबराये हुए क्यों हो ?

१ दर्भक—सुनता हूँ, अचलायतन में न जाने कौन लड़ने

के लिये आए हैं।

आचार्य–लड़ाई काहे की? आज तो गुरुदेव की अवाई है।

२ दर्भक–ना ना, लड़ाई हो रही है–मैंने खबर पाई है। उन्होंने सब तोड़-फोड़कर एकाकार कर डाला है।

३ दर्भक–महाराज, अगर आपकी आज्ञा हो तो हम लोग जाकर उनको रोकें।

आचार्य–वहाँ तो बहुत आदमी हैं, तुम्हारी क्या आवश्यकता है? तुम डरो नहीं, तुम्हारे लिये कुछ भी भय नहीं है–पुत्रो!

१ दर्भक–आदमी तो बहुत हैं सही, लेकिन वे लड़ाई कहाँ कर सकते हैं, जो लड़ेंगे?

२ दर्भक–सुना है, न-जाने कितने जंत्र-मंत्र, गंडे-तावीज उन्होंने दोनों हाथों में, तले से ऊपर तक कसकर बाँध रक्खे हैं। इस डर से खोलते नहीं कि कहीं काम करने में उन गंडों का प्रभाव या हाथों की शक्ति न जाती रहे।

पंचक–लड़ाई कौन करने आए हैं, यह तो बतलाओ?

१ दर्भक–लोगों के मुँह से सुन पड़ता है कि वे लोग दादा ठाकुर का दल कहलाते हैं।

पंचक–दादा ठाकुर दल! ठीक बता. यही सुना है?

दर्भक–महाराज, आज्ञा दीजिए, हम जाकर उनसे लड़ें, उन्हें दिखला दें कि यहाँ भी मनुष्य हैं।

पंचक–चलो भाई, मैं भी तुम लोगों के साथ चलूँगा।

दर्भक–तुम भी लड़ोगे क्या महाराज?

पंचक– हाँ लड़ूँगा।

आचार्य—क्या कहते हो पंचक ! तुमको लड़ने के लिये कौन पुकारता है ?

[माली का प्रवेश]

माली—आचार्य देव, हम लोगों के गुरुदेव आ रहे हैं।

आचार्य—तू कहता क्या है ? गुरुदेव ? यहाँ आ रहे हैं ? मुझको वहीं क्यों न बुला भेजा ? खबर पाते ही तो मैं चला आता।

१ दर्भक—यहाँ आप के गुरुदेव आए, तो उन्हें कहाँ बिठावेंगे ?

२ दर्भक—महाराज, तुम यहाँ पर उनके बैठने की जगह ज़रा शुद्ध कर लो—हम अगल हटे जाते हैं।

[दर्भकों के और एक दल का प्रवेश]

१ दर्भक—महाराज, यह आप लोगों के गुरुदेव नहीं हैं; वह हमारे महल्ले में क्यों आने लगे ? यह हम लोगों के गुरुदेव गोसाईं जी आ रहे हैं !

२ दर्भक—हम लोगों के गोसाईं जी आ रहे हैं ?

१ दर्भक—हाँ रे हाँ, हम लोगों के गोसाईं जी ! ऐसे साज-सामान से मैंने और कभी उनको नहीं देखा। देखने से आंखें चौंधिया जाती हैं।

३ दर्भक—घर में क्या-क्या सामग्री है भाइयो, सब निकालो।

२ दर्भक—मेरे यहाँ जामुन के फल हैं।

४ दर्भक— मेरे घर में खजूरें हैं।

१ दर्भक—उस काली गऊ का दूध जल्दी से दुह तो लाओ दादा।

[दादा ठाकुर का प्रवेश]

आचार्य-[प्रणाम करके] जय गुरुदेव की, जय !

पंचक-यह क्या ! यह तो दादा ठाकुर हैं । गुरुदेव कहाँ हैं ?

दर्भकगण-गोसाईं ठाकुर, हम पैरों पड़ते हैं। आपने पहले आने की खबर क्यों नहीं दी ? आपका भोजन तो अभी तैयार नहीं हुआ।

दादा०-क्यों भाई, तुम्हारे यहाँ आज रसोई क्या नहीं चढ़ी ? तुम लोगों ने भी मंत्र लेकर उपवास करना शुरू कर दिया है क्या ?

१ दर्भक-हमारे यहाँ तो सिर्फ उर्द की दाल, मोटा भात और बाजरे की रोटियाँ हुई हैं। घर में और कुछ था ही नहीं।

दादा०-तो फिर मेरा भी भोजन उसी में हो जायगा ।

पंचक-दादा ठाकुर, मुझे इस बात का बड़ा गर्व था कि इस राज्य-भर में अकेला मैं ही तुमको पहचानता हूँ। मगर अब देखता हूं, तुमको सभी पहचानते हैं।

१ दर्भक-यह तो हमारे गोसाईं जी पुन्नमासी के दिन आकर भोजन कर गए थे, उसके बाद बहुत दिनों पर आज दर्शन देने आए हैं। चलो भाइयो, हमारे घर में जो कुछ है, वह ले आवें।

[प्रस्थान]

दादा०-आचार्य, तुमने यह क्या किया !

आचार्य-मैंने क्या किया, यह समझने की शक्ति भी इस समय मुझमें नहीं है । हाँ, इतना समझता हूँ कि मैंने सब नष्ट

कर डाला।

दादा०-जो तुम्हें मुक्ति देंगे, उन्हीं को तुमने केवल बाँधने की चेष्टा की है।

पंचक-मैं इस सोच-विचार में पड़ा हूँ कि तुम को क्या कहकर पुकारूँ ? दादा ठाकुर कहूँ, या गुरुदेव ?

दादा०-जो यह जानना नहीं चाहता कि मैं उसका संचालन करता हूँ, उसका मैं दादा ठाकुर हूँ। और जो मेरी आज्ञा लेकर चलना चाहता है, उसका मैं गुरु हूँ।

पंचक-प्रभो, तब तो तुम मेरे दोनों ही हो! मुझे मैं ही चलाता हूँ, और मुझे तुम ही चलाते हो, इन दोनों भावों को मिलाकर मैं अनुभव करना चाहता हूँ। मैं तो यूनक नहीं हूँ, तुम्हें मानकर चलने में मुझे कोई भय नहीं है। मुझे विश्वास है कि मैं तुम्हारे मुख के आदेश को ही आनन्दपूर्वक अपने मन की इच्छा बना सकूँगा। अच्छा, तो अब तुम्हारे साथ तुम्हारा बोझ सिर पर लादकर निकल पड़ूँगा देव !

पंचक-कहाँ ठाकुर ?

दादा०-मैंने तुम्हारी जगह ठीक कर रक्खी है।

दादा०-इसी अचलायतन में !

पंचक-फिर अचलायतन में ? क्या मेरे कारावास-दण्ड की अवधि अभी पूरी नहीं हुई ?

दादा०-कारागार जो था, उसे तो मैंने तोड़ डाला। अब उसी सामग्री से वहीं पर तुमको मन्दिर उठाना होगा।

पंचक-किन्तु अचलायतन के लोग तो मुझे अपना समझकर ग्रहण नहीं करेंगे प्रभो !

दादा-वे लोग तुम्हें ग्रहण नहीं करना चाहते, इसी कारण

तो वहाँ तुम्हारी सबसे अधिक आवश्यकता है वत्स! वे तुमको ठेले देते हैं तो ठेले दें, लेकिन तुम तो उनको ठेलकर अपने से दूर नहीं कर सकोगे।

पंचक–तो फिर मुझे क्या करना होगा?

दादा०–जो जहाँ बिछड़ा और बिखरा पड़ा है उसे वहाँ से बुला लाकर एक जगह जमा करना होगा।

पंचक—वहाँ सभी के लिये क्या जगह हो जायगी?

दादा०–अभी सब के लिये अगर जगह न हो, तो दीवार को फिर एक दिन एक बार तोड़ना ही होगा। मैं अब अचलायतन का द्वार खोलने जाता हूँ।

[प्रस्थान]

—०—

चौथा दृश्य

स्थान—अचलायतन

(महापंचक, संजीव, विश्वंभर और जयोत्तम उपस्थित)

महापंचक–तुम लोग इस तरह घबराए हुए क्यों हो? कोई डर नहीं है।

विश्वम्भर–तुम तो कहते हो कि डर नहीं है, लेकिन उधर से खबर आई है कि शत्रुसेना ने अचलायतन की दीवार में बड़े-बड़े छेद कर दिये हैं।

महापंचक–यह खबर कभी विश्वास के योग्य नहीं है। पत्थर की शिला कभी पानी में तैर सकती है? म्लेच्छ लोग पवित्र अचलायतन की दीवार में छेद कर देंगे। तुम भी पागल हुए हो!

संजीव–कोई कहता था कि वह देख आया है।

महापंचक–उ..ने स्वप्न देखा होगा।

जयोत्तम–आज ही तो हमारे गुरुदेव के आने की बात है।

महापंचक–उनके लिये सब तैयारी ठीक हो गई है, केवल ऐसा लड़का अभी तक ढूँढे नहीं मिला, जो नवें गर्भ से पैदा हुआ हो, और जिसका मा-वाप-भाई-बहन कोई न मरा हो। अब प्रश्न यही है कि द्वार पर खड़े होकर महारक्षा का पाठ कौन करेगा?

संजीव–गुरुदेव के आने पर उनको पहचानेगा कौन, यह भी तो एक भारी समस्या है। आचार्य अदीनपुण्य उनको जानते थे। हम लोगों में से तो किसी ने गुरुदेव को कभी देखा भी नहीं।

महापंचक–हम लोगों के आयतन में जो शंख बजाता है, उसी वृद्ध ने गुरुदेव को देखा है। हम लोगों के यहाँ पूजा के लिये जो फूल देता है, वह भी उनको जानता है।

विश्वंभर–यह लो, उपाध्याय जी घबराये हुए दौड़े आ रहे हैं।

महापंचक–निश्चय ही इन्होंने गुरुदेव के आने का समाचार पाया है। किन्तु महारक्षा के पाठ का क्या किया जाय? ठीक लक्षणों से सम्पन्न वैसा लड़का तो मिला नहीं।

[उपाध्याय का प्रवेश]

महापंचक–कितनी दूर पर हैं गुरुदेव?

उपाध्याय–कितनी दूर क्या, बिलकुल आ ही पहुँचे।

महापंचक–कहाँ, द्वार पर तो अभी तक शंख नहीं बजा!

उपाध्याय–उस की कुछ विशेष आवश्यकता तो नहीं दीख पड़ती। कारण, द्वार का तो कहीं नाम-निशान भी नहीं देख पड़ता, टूट कर चूरमूर हो गया।

महापंचक–कहते क्या हो? द्वार टूट गया?

उपाध्याय–केवल द्वार ही नहीं, दीवारों को भी इस तरह गिरा कर बराबर कर दिया है कि उन के सम्बन्ध में अब कुछ चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। वह देखते नहीं हो प्रकाश!

महापंचक–किन्तु हमारे ज्योतिषी जी महाराज तो गणित करके स्पष्ट ही दिखला गये थे कि—

उपाध्याय–उसकी अपेक्षा अब तो शत्रु-सेना की लाल रंग की टोपियाँ अधिक स्पष्ट देख पड़ती हैं! यह लो, बिलकुल सफ़ाया हो गया!

छात्रगण–हाय-हाय! सर्वनाश हो गया!

संजीव–किस काम का है तुम्हारा मन्त्र महापंचक! वह किस काम आया?

विश्वम्भर–मैंने तो तभी कह दिया था कि ये सब काम ऐसी कच्ची उमर के पढ़े-लिखे अकालपक्व छोकरों से नहीं हो सकते।

संजीव–ख़ैर, अब यह बताओ कि किया क्या जाय?

जयोत्तम–चलो अपने आचार्यदेव को मनावें और लौटा लावें। वह होते, तो कभी ऐसी आफ़त न आती। हज़ार हों, हैं बड़े बुद्धिमान् और समझ के पक्के।

संजीव–देखो महापंचक, मैं तुम से कहे देता हूँ, अगर इस आयतन पर कोई आफ़त आई, तो मैं तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर

डालूँगा !

उपाध्याय—यह परिश्रम तुम को न करना पड़ेगा, उस के योग्य आदमी आ रहा है।

संजीव—देखते हो, देखते हो, देखो-देखो वह सब गिर गया।

छात्रगण—अब हम लोगों का क्या होगा! निश्चय ही द्वार भी टूट गया! यह लो, एक दम स्वच्छ नीलवर्ण आकाश देख पड़ने लगा।

[बालकों के दल का प्रवेश]

उपाध्याय—क्यों रे, तुम सब नाच क्यों रहे हो ?

१ बालक—आज यह कैसा मज़ा हुआ।

उपाध्याय—कैसा मज़ा, सुनाओ तो।

२ बालक—आज चारों ओर से प्रकाश आ रहा है—सब जैसे खुला-सा हो गया है।

३ बालक—इतना प्रकाश तो हम ने किसी दिन नहीं देखा!

१ बालक—कहीं की चिड़िया की आवाज़ यहीं से सुनाई दे रही है।

२ बालक—इन सब चिड़ियों की आवाज़ तो हम ने कभी नहीं सुनी! यह आवाज़ तो हमारी पालतू पिंजड़े की मैना की-सी बिलकुल नहीं है।

१ बालक—आज हमारा जी चाहता है कि खूब दौड़ें-धूपें। इस में क्या कुछ दोष है महापंचक दादा ?

जयोत्तम—मेरा मन भी जैसे रह-रह कर नाच उठ रहा है

विश्वंभर ! यह भय है, या आनन्द, कुछ समझ में नहीं आता !

विश्वंभर—आज एक अद्भुत बात हो रही है जयोत्तम !

संजीव—किंतु बात है क्या, कुछ समझ में नहीं आता ! अरे ओ लड़को, तुम लोग एकाएक इतने प्रसन्न क्यों हो उठे हो, बतलाओ तो भला !

१ बालक—देखते नहीं, सारा आकाश जैसे घर के भीतर दौड़ कर आ गया है।

२ बालक—जान पड़ता है, छुट्टी है—हम लोगों की छुट्टी है !

[बालकों का प्रस्थान]

जयोत्तम—देखो महापंचक दादा, मुझे जान पड़ता है, भय कुछ नहीं है,—नहीं तो इन लड़कों का मन इस तरह अकारण ही क्यों खुश हो उठता ?

महापंचक—बेशक, भय नहीं है, और मैं यह पहले ही से कह रहा हूँ।

[शंख बजाने वाले और माली का प्रवेश]

दोनों—गुरुदेव आ रहे हैं !

सब—गुरुदेव !

महापंचक—सुन लिया न ! मैं तो जानता था कि निश्चय ही तुम लोगों की आशंका वृथा है !

सब—भय नहीं है, अब कुछ भय नहीं है !

विश्वंभर—महापंचक जब तक यहाँ है तब तक हम लोगों के लिये कुछ भय हो ही नहीं सकता।

सब—जय आचार्य महापंचक की !

[योद्धा के वेश में दादा ठाकुर का प्रवेश]

शंख बजाने वाला और माली—[प्रणाम कर के] जय गुरु-देव की जय !

[सब सन्नाटे में आकर खड़े रह जाते हैं]

महापंचक—उपाध्याय जी, यही गुरु हैं ?

उपाध्याय—वही तो सुनता हूँ।

महापंचक—तुम्हीं क्या हम लोगों के गुरु हो ?

दादा०—हाँ ! तुम मुझे नहीं पहचानोगे—किंतु तुम्हारा गुरु मैं ही हूँ !

महापंचक—तुम गुरु हो ? तुम हमारे सब नियमों का उल्लंघन कर के आज यहाँ किस रास्ते से आ गए ? तुम को कौन मानेगा ?

दादा०—मैं जानता हूँ कि तुम मुझे नहीं मानोगे; लेकिन हूँ मैं ही तुम्हारा गुरु।

महापंचक—तुम गुरु हो ? तो फिर यहाँ शत्रु के वेश में क्यों आए हो ?

दादा०—यही तो मेरा गुरु-वेश है। तुम जो मेरे साथ लड़ाई करोगे, वही मेरी गुरु-अभ्यर्थना है।

महापं०—तुम क्यों हमारी दीवार तोड़ कर आए ?

दादा०—तुम ने अपने गुरु के लिये कहीं प्रवेश का मार्ग ही नहीं रक्खा था !

महापंचक—(उपाध्याय से) तुम इन को प्रणाम करोगे क्या ?

उपाध्याय—दया करके यह अगर हम लोगों का प्रणाम ग्रहण करें, तो प्रणाम करूँगा क्यों नहीं—नहीं तो—

महापंचक—नहीं, मगर मैं इन को प्रणाम नहीं करूँगा।

दादा०—मैं तुम्हारा प्रणाम नहीं ग्रहण करूँगा—मैं तुम को प्रणत करूँगा।

महापंचक—तुम हम लोगों की पूजा लेने नहीं आए ?

दादा०—मैं तुम लोगों की पूजा लेने नहीं आया—तुम से अपमान प्राप्त करने आया हूँ।

महापंचक—तुम्हारे पीछे ये अस्त्र-शस्त्र लिये हुए आदमी कौन हैं ?

दादा०—ये मेरे अनुगामी हैं—ये यूनक हैं ?

सब—यूनक हैं !

महापंचक—ये ही तुम्हारे अनुगामी हैं ?

दादा०—हाँ।

महापंचक—यह मंत्रज्ञानहीन, कर्मकांडहीन म्लेच्छों का दल ! मैं इस आयतन का आचार्य हूँ। मैं तुम को आज्ञा देता हूँ कि तुम अभी इन म्लेच्छों को साथ लेकर वाहर निकल जाओ।

दादा०—मैं आज जिसे आचार्य बनाऊँगा, वही आचार्य होगा—मैं जो आज्ञा दूँगा, वही आज्ञा चलेगी।

महापंचक—पत्थर की दीवार को तुम तोड़ सकते हो, लोहे का द्वार तुम खोल या गिरा सकते हो—तोड़ो, खोलो, गिराओ, कुछ पर्वा नहीं। लो मैं अपनी इन्द्रियों के सब द्वार वंद कर के वैठता हूँ। इस प्रायोपवेशन में मैं चाहे मर जाऊँ, तथापि तुम लोगों की हवा, तुम लोगों का प्रकाश अपने शरीर में न लगने दूँगा।

१ यूनक—यह पागल कहाँ का है जी! इस तलवार की नोक से इस के सिर की खोपड़ी ज़रा हटा न दो, जिस में इस की बुद्धि में ज़रा हवा तो लगे।

महापंचक—तुम मुझे काहे का भय दिखाते हो! तुम लोग अधिक-से-अधिक मुझे मार डालोगे। बस, इस से अधिक तो तुम कुछ नहीं कर सकते!

१ यूनक—दादा ठाकुर, इस आदमी को पकड़ कर अपने यहाँ ले न चलें? इस का तमाशा देख कर हमारे देश के लोग बहुत प्रसन्न होंगे।

दादा०—इसे तुम लोग पकड़ोगे? ऐसा कौन बंधन तुम्हारे हाथ में है?

२ यूनक—इसे क्या कोई दण्ड न दिया जायगा?

दादा०—दण्ड दूँगा! इसे तुम छू भी नहीं सकोगे। यह आज जहाँ बैठा है, वहाँ तक तुम लोगों की तलवार नहीं पहुँचने की।

[बालकों के एक दल का प्रवेश]

सब लड़के—तुम हम लोगों के गुरु हो?

दादा०—हाँ मैं तुम लोगों का गुरु हूँ।

सब०—हम सब प्रणाम करते हैं।

दादा०—पुत्रो, तुम महान् जीवन प्राप्त करो।

१ बालक—महाराज, तुम हम लोगों को ले कर क्या करोगे?

दादा०—मैं तुम्हारे साथ खेलूँगा।

सब०—हाँ, खेलोगे?

दादा०—नहीं तो तुम लोगों के गुरु होने में क्या सुख ?

सब०–कहाँ खेलोगे ?

दादा०–मेरे खेलने के लिए बहुत बड़ा मैदान है।

१ बालक—बहुत बड़ा ! इस घर के जैसा बड़ा ?

दादा०—इस से कहीं अधिक बड़ा है।

२ बालक–इस से भी बड़ा ? इस आँगन के बराबर ?

दादा०–उस से भी बड़ा।

२ बालक–उस से भी बड़ा ! बाप रे !

१ बालक–वहाँ जाने से पाप तो नहीं होता ?

दादा०–कैसा पाप ?

२ बालक–खुली जगह में जाने से पाप नहीं होता ?

दादा०–खुली जगह ही में तो सब पाप भाग जाते हैं।

सब–कब ले चलोगे ?

दादा०–यहाँ का काम पूरा होते ही ले चलूँगा।

जयोत्तम–[प्रणाम कर के] प्रभो, मैं भी चलूँगा।

विश्वंभर–संजीव, अब दुविधा करने से केवल समय ही नष्ट होगा।–प्रभो, इन बालको के साथ मुझे भी बुला लो।

संजीव—महापंचक दादा, तुम भी न आओ।

महापंचक—नहीं, मैं नहीं चलूँगा।

[सुभद्र का प्रवेश]

सुभद्र—गुरुदेव !

दादा०—क्या है बेटा !

सुभद्र—मैं ने जो पाप किया है उसका प्रायश्चित तो

शायद पूरा नहीं हुआ ?

दादा०–प्रायश्चित में अब कुछ बाकी नहीं रहा।

सुभद्र–बाकी नहीं रहा ?

दादा०–ना। मैं ने सब चूरमार करके धूल में मिला दिया।

सभद्र–एक जटा देवी–

दादा०–एकजटा देवी ! उत्तर ओर की दीवार टूटते ही एकजटा देवी के साथ हम लोगों का ऐसा मिलन हो गया कि वह अब कभी किसी दिन जटाएं हिला कर किसी को भय नहीं दिखावेगी। अब उसे देखने से जान पड़ेगा कि वह आकाश का प्रकाश है–उसकी सब जटाएँ आषाढ़ के नवीन मेघ में लिपट गई हैं।

सुभद्र–अब मैं क्या करूँगा ?

पंचक–अब तुम हो भाई, और मैं हूँ। दोनों जने मिल कर उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के सभी दरवाज़ों और खिड़कियों को खोलते फिरेंगे–बस !

[यूनकों और दर्भकों के दल प्रवेश करके गुरु की प्रदक्षिणा करते हुए गाते है]

गीत

बंद द्वार को तोड़-फोड़ कर और छोड़ कर तम-भ्रमजाल,
ज्योतिर्मय, तुम भले पधारे; जय हो, जय हो, दीन-दयाल।
हो उदार अभ्युदय तुम्हारा, अनुगत हो सारा संसार;
जय-जय धीर, वीरवर, विजयी, भक्तजनों को करो निहाल।
नव जीवन के उषःकाल में, नव आशा का खींचो खड्ग,
जीर्ण मोह का मूल काट दो, छिन्न-भिन्न हो बंधन-जाल।
आओ दुस्सह, आओ निर्दय, आओ निर्भय, निर्मल-रूप,

जय-जय-कार तुम्हारा हो प्रभु, जल जावे जग का जंजाल।
हे प्रभात-रवि रुद्र साज से, आए हो तुम धन्य किया,
दुःख-मार्ग में तूर्य तुम्हारा, बजता रहे सदैव त्रिकाल।
अरुण ज्ञान का हृदय-गगन में, उदय हुआ, छाई लाली,
हे मृत्युंजय, मृत्यु-जनित भय, नष्ट करो, अस्पष्ट-कराल।

(यवनिका-पतन)

इति

———

नीलदेवी

(लेखक—बाबू हरिश्चन्द्र)

नाटक के पात्र

सूर्य्यदेव	... ...	पंजाब का एक राजा
नीलदेवी	... ...	सूर्य्यदेव की पत्नी
देवीसिंह	... ...	सूर्य्यदेव का सेनापति
सोमदेव	... ...	सूर्य्यदेव का पुत्र
अब्दुलशरीफ़	... ...	मुसलमान अमीर
क़ाज़ी	... ...	अमीर का पुरोहित

पागल, मींया, सैनिक, मुसाहिब आदि ।

पहला अंक

स्थान—हिमगिरि का शिखर

(तीन अप्सरा गान करती हुई दिखाई देती हैं)

अप्सरागण—(झिंझोटी जल्द तिताला)

धन धन भारत की छत्रानी ।
वीरकन्यका वीरप्रसविनी वीरवधू जग जानी ॥
सतीसिरोमनि धरमधुरंधर बुधि-बल-धीरज-खानी ।
इनके जस की तिहूँ लोक में अमल धुजा फहरानी ॥

सब मिलि गाओ प्रेम बधाई ।
यह संसार रतन इक प्रेमहि और बादि चतुराई ॥
प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई ।
जोग ध्यान जप-तप-व्रत-पूजा प्रेम बिना बिनसाई ॥
प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई ।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ॥

———

दूसरा अंक

स्थान–युद्ध के डेरे खड़े हैं

(एक शामियाने के नीचे अमीर अब्दुश्शरीफ़ खाँ सूर बैठा है और मुसाहिब लोग इर्द-गिर्द बैठे हैं)

शरीफ—(एक मुसाहिब से) अबदुस्समद ! खूब होशियारी से रहना। यहाँ के राजपूत बड़े काफ़िर हैं। इन कमबख्तों से खुदा बचाए। (काजी से) काजी साहब ! मैं आप से क्या बयान करूँ, वल्लाही सूरजदेव एक ही बदबला है। सारे पंजाब में ऐसा बहादुर दूसरा नहीं।

काजी—बेशक हुजूर ! सुना गया है कि वह हमेशा खेमों ही में रहता है। आसमान शामियाना और जमीन ही उसे फर्श है। हजारों राजपूत उसे हर वक्त घेरे रहते हैं।

शरीफ—वल्लाह तुमने सच कहा, अजब मनहूस से पाला पड़ा, जान तंग है। किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद पस्त हो जाते।

एक मुसाहिब—खुदावन्द ! हाथ आना दूर रहा, उसके खौफ से अपने खेमे में रह कर भी खाना-सोना हराम हो रहा है।

शरीफ—कभी उस बेईमान से सामने लड़ कर फतह नहीं मिलनी है। मैंने तो अब जी में ठान ली है कि मौका पाकर एक शब उसको सोते हुए गिरफ्तार कर लाना।

काज़ी—इन्शा अल्लाह तआला।

शरीफ—कसम है कलामे शरीफ की, मेरी खुराक आगे से इस चिन्ता में आधी हो गई है। (सब लोगों से) देखो, अब मैं सोने जाता हूं, तुम सब लोग होशियार रहना।

(गजल)

(उठकर सब की तरफ देख कर)

इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार।
गफलत न जरा भी हो खबरदार खबरदार॥
ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा।
काफिर है य पंजाब का सरदार खबरदार॥
अजगर है, भभूका है, जहन्नुम है, बला है।
बिजली है, गजब इसकी है तलवार खबरदार॥
दरबार में वह तेगे शररबार न चमके।
घरबार से बाहर से भी हर बार खबरदार॥
इस दुश्मने ईमाँ को है धोखे से फँसाना।
लड़ना न मुकाबिल कभी ज़िनहार खबरदार॥

[सब जाते हैं]

——

तीसरा अंक

स्थान-पहाड़ की तराई

(राजा सूर्य्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत बैठे हैं)

सूर्य्य०—कहो भाइयो ! इन मुसलमानों ने तो अब बड़ा उपद्रव मचाया है ।

प०—तो महाराज ! जब तक प्राण हैं तब तक लड़ेंगे ।

दू०—महाराज ! जय-पराजय तो परमेश्वर के हाथ है, परन्तु हम अपना धर्म्म तो प्राण रहे तक निबाहेंगे ही ।

सूर्य्य०—हाँ-हाँ, इस में क्या सन्देह है । मेरा कहने का मतलब यह है कि सब लोग सावधान रहें ।

ती०—महाराज ! सब सावधान हैं । धर्म्म में तो हमको जीतनेवाला कोई पृथ्वी पर नहीं है ।

नीलदेवी—पर सुना है कि ये दुष्ट अधर्म से बहुत लड़ते हैं ।

सूर्य्य०—हे प्यारी ! वे अधर्म्म से लड़ें, हम तो अधर्म्म नहीं कर सकते ! हम आर्य्यवंशी लोग धर्म छोड़कर लड़ना क्या जानैं ? यहाँ तो सामने लड़ना जानते हैं । जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग । हमारे तो दोनों हाथ लड्डू हैं; और यश तो जीतें तो भी हमारे साथ है और मरें तो भी ।

चौथा रा०—महाराज ! इस में क्या संदेह है, और हम लोगों को एकाएकी अधर्म्म से भी जीतना कुछ दाल-भात का गस्सा नहीं है।

नीलदेवी—तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए। आप लोग सब तरह चतुर हो, मैं इस में विशेष क्या कहूँ। पर स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं रहता।

सूर्य्य०—(आदर से) प्यारी ! कुछ चिन्ता नहीं है, अब तो जो कुछ होगा, देखा ही जायगा। (राजपूतों से)

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदा हीं।
जागत ही सब रहैं रैन हूँ सोअहिं नाहीं॥
कसे रहैं कटि रात-दिवस सब बीर हमारे।
अस्वपीठ सों होंहिं चारजामें जिनि न्यारे॥
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बन्दूकन।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरें छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर यवन बहादुर।
आवहिं तो चढ़ि सनमुख कायर कूर सबै जुर॥
देहैं रन को स्वाद तुरंतहि तिनहिं चखाई।
जो पै इक छन हू सनमुख ह्वै करहिं लराई॥

[यवनिका गिरती है]

———

चौथा अंक

स्थान—सूर्य्यदेव के डेरे का बाहरी प्रान्त

[रात्रि-समय देवासिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है]

[नेपथ्य में गान]

[राग कलिंगड़ा]

सोओ सुख-निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे वारे,
सोओ सुख-निंदिया प्यारे ललन।
भई आधी रात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात।
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हलन॥
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सन-सन लगी सीरी पवन चलन।

सिपाही—बरसों घर छूटे हुए । देखें कब इन दुष्टों का मुँह काला होता है । महाराज घर फिर कर चलें तो देस फिर से बसे । रामू की माँ को देखे कितने दिन हुए । बच्चों की तो खबर तक नहीं मिली । (चौंक कर ऊँचे स्वर से) कौन है ? खबरदार जो किसी ने झूठमूठ भी इधर देखने का विचार किया । (साधारण स्वर से) हाँ—कोई यह न जाने कि देवासिंह इस समय जोरू-लड़कों की याद करता है, इस से भूला है । छत्री का लड़का है । घर की याद आवे तो और प्राण छोड़ कर लड़े । (पुकार कर) खबरदार । जागते रहना ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

कौन है ! यह कैसा शब्द आता है ! खबरदार ।

(नेपथ्य में विशेष कोलाहल)

(घबड़ाकर) हैं ! यह क्या है ? अरे क्यों एक साथ इतना कोलाहल हो रहा है । वीरसिंह ! वीरसिंह ! जागो । गोविन्दसिंह दौड़ो !

(नेपथ्य में बड़ा कोलाहल और मार-मार का शब्द । शस्त्र खींचे हुए अनेक यवकों का प्रवेश । 'अल्लाहो अकबर' का शब्द । देवासिंह का युद्ध और पतन । युवनों का डेरे में प्रवेश)

(जवनिका गिरती है)

———

पांचवां अंक

स्थान--कैदखाना

(महाराज सूर्य्यदेव एक लोहे के पिंजड़े में मूर्छित पड़े हैं। एक देवता सामने खड़ा होकर गाता है।)

देवता--

(लावनी)

सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु वीर-वर भारत की सब आसा॥
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वै है।
सो दिन फिर इत अब सपनेहूँ नहि ऐहै॥
स्वाधीनपनो बल धीरज सवहि नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै॥
दुख ही दुख करिहै चारहु ओर प्रकासा।
अब तजहु वीर-वर भारत की सब आसा॥
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै॥
वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै।
तजि उद्यम सब ही दासवृत्ति अनुसरिहै॥
ह्वै जैहैं चारहु वरन शूद्र बनि दासा।
अब तजहु वीर-वर भारत की सब आसा॥

ह्वैहैं इतके सव भूत पिशाच उपासी ।
कोऊ वनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी ॥
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी ।
निज हरि सों ह्वैहैं विमुख भरत भुववासी ॥
तजि सुपथ सवहि जन करिहैं कुपथ विलासा ।
अव तजहु वीर-वर भारत की सव आसा ॥
अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सवहि पराई ।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई ॥
तुरकन हित करिहैं हिन्दू संग लराई ।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई ॥
तजि निज-कुल करिहैं नीचन संग निवासा ।
अव तजहु वीर-वर भारत की सव आसा ॥
रहे हमहुँ कवहुँ स्वाधीन आर्य वलधारी ।
यह दैहैं जिय सों सव ही वात विसारी ॥
हरि-विमुख धरम विनु धन, वलहीन दुखारी ।
आलसी मंद तन छीन, छुधित संसारी ॥
सुख सों सहिहैं सिर यवनपादुका त्रासा ।
अव तजहु वीर-वर भारत की सव आसा ॥

(जाता है)

सूर्य्य-(सिर उठा कर) यह कौन था ? इस मरते हुए शरीर पर इसने अमृत और विप दोनों एक साथ क्यों वरसाया ? अरे अभी तो यहाँ खड़ा गा रहा था, अभी

कहाँ चला गया ? निस्सन्देह यह कोई देवता था। नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता है। ऐसा सुन्दर रूप और ऐसा मधुर सुर और किस का हो सकता है। क्या कहता था ? 'अब तजहु वीर-वर भारत की सब आसा'। एं ! यह देववाक्य क्या सचमुच सिद्ध होगा ? क्या अब भारत का स्वाधीनता-सूर्य फिर न उदय होगा ? क्या हम क्षत्रिय राजकुमारों को भी अब दासवृत्ति करनी पड़ेगी ? हाय ! क्या मरते-मरते भी हम को यह वज्र शब्द सुनना पड़ा ? और क्या कहा, 'सुख सों सहिहैं सिर यवनपादुका त्रासा।' हाय ! क्या अब यहाँ यही दिन आवेगे ? क्या भारतजननी अब एक भी वीरपुत्र न प्रसव करेगी ? क्या दैव को अब इस उत्तम भूमि की यही नीच गति करनी है ? हा ! मैं यह सुनकर क्यों नहीं मरा कि आर्यकुल की जय हुई और यवन सब भारतवर्ष से निकाल दिए गए।

(हाय-हाय करता और रोता हुआ मूर्छित हो जाता है)

(जवनिका गिरती है)

छठा अंक

स्थान—मैदान, वृक्ष

(एक पागल आता है)

पागल—मार मार मार—काट काट काट—ले ले ले—ईत्री—सीत्री—चीत्री— तुरक तुरक तुरक—अरे आया आया आया—भागो भागो भागो । (दौड़ता है) मार मार मार—और मार दे मार—जाय न जाय न—दुष्ट चाण्डाल गोभक्षी यवन—अरे हाँ रे यवन लाल डाढ़ी का यवन—बिना चोटी का यवन—हमारा सत्यानाश कर डाला । हमारा हमारा हमारा । इसी ने इसी ने—लेना, जाने न पावे । दुष्ट म्लेच्छ—हुँ ! हम को राजा बनावेगा । छत्र चँवर मुरछल सिंहासन सब—पर यवन का दिया—मार मार मार—शस्त्र न हो तो मन्त्र से मार । मार मार मार । मीयाँ मीयाँ मीयाँ, चींयाँ चींयाँ चींयाँ । अल्ला अल्ला अल्ला, हल्ला हल्ला हल्ला । मार मार मार । लोहे के नाती की दुम से मार । पहाड़ की स्त्री के दिये से मार—मार मार—अंड का बंड का संड का खंड—धूप छाँह, चना मोती, अगहन पूस माघ, कपड़ा लत्ता, डोम चमार, मार मार । ईट की आँख में हाथी का बान–चन्दर की थैली चूने की

कमान—मार मार मार—एक एक एक मिल मिल मिल छिप छिप छिप—खुल खुल खुल—मार मार मार—

(एक मियाँ को आता देख कर)

मार मार मार—मुसल मुसल मुसल—मान मान मान—सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार—नबी नबी नबी—सबी सबी सबी—ऊँट के अण्डे की चरबी का खर। कागज के धप्पे कर सप्पे की सर—मार मार मार।

(मियाँ के पास जाकर)

तुरुक तुरुक तुरुक—घुरुक घुरुक घुरुक—मुरुक मुरुक मुरुक—फुरुक फुरुक फुरुक—याम शाम लीम लाम ढाम—

(मियाँ को पकड़ने दौड़ता है)

मियाँ—(आप ही आप) यह तो बड़ी हत्या लगी। इस से कैसे पिंड छुटेगा। (प्रकट) दूर दूर।

पागल—दूर दूर दूर—चूर चूर चूर—मियाँ की दाढ़ी में दोजख की हूर—दन तड़ाक छू, मियाँ की माई में मोयीं की मूँ—मार मार मार—मियाँ छार खार—छार।

(मियाँ के पास जाकर अट्टहास करके)

रावण का साला, दुर्योधन का भाई, अमरूद के पेड़ को पसेरी बनाता है—अच्छा अच्छा—नहीं नहीं तैंने तो हमको उस दिन मारा था न! हाँ हाँ यही है यही—जाने न पावे। मार मार—

(मियाँ की गरदन पकड़कर पटक देता है और छाती पर चढ़ कर बैठता है)

रावण का साला, दिल्ली का नवाब, वेद की किताब—बोल हम राजा कि तू राजा—(मियाँ की डाढ़ी पकड़ कर खींचने से कृत्रिम डाढ़ी निकल आती है। विष्णुशर्मा को पहिचान कर अलग हो जाता है) रावण का साला, मियाँ का भेस, विष्णु के कान में शर्मा का केस। मेरी शक्ति गुरु की भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच, डाढ़ी जगावे तो मियाँ साँच।

(आँख से इंगित करता है)

मियाँ—(फिर डाढ़ी लगा कर) लाहौल बिला कूवत क्या बेख़बर पागल है। इसके घर के लोग इसके लौटने के मुन्तज़िर हैं, यह यहीं पड़ा है।

पागल—पड़ा घड़ा सड़ा—घूम घाम जड़ा—एक एक बात—जात सात धात—नास-नास-नास, घास छास फास।

मियाँ—क्या सचमुच—दरहकीकत—यह बड़ा भारी पागल है।

पागल—सचमुच नास—राजा अकास—ढाल बे ढाल मियाँ मतवाल।

(आँख से दूर जाने को इंगित करता है। मियाँ आगे बढ़ते हैं—यह पीछे धूल फेंकता दौड़ता है)

मार मार मार। बरसा की धार। लेना जाने न पावे। मियाँ का खब्बर। (दोनों एकान्त में जाकर खड़े होते हैं)

मियाँ—(चारों ओर देख कर) अरे वसन्त! क्या सचमुच सर्वनाश हो गया ?

पागल—पण्डित जी ! कल रात ही महाराज ने प्राण त्याग किए। (रोता है)

मियाँ—हाय ! महाराज, हम लोगों को आप किस के भरोसे छोड़ गए ! अब हम को इन नीचों का दासत्व भोगना पड़ेगा ! हाय ! (चारों ओर देख कर) हाँ समाचार तो कहो क्या हुआ।

पागल—कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तो हम तुम को अब भी छोड़ दें। इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था। महाराज ने लोहे के पिंजड़े में से उसके मुँह पर थूक दिया, और क्रोध करके कहा कि दुष्ट ! हम को पिंजड़े में बन्द और परवश जानकर ऐसी बात कहता है। क्षत्री कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं ! तुझ पर थू और तेरे मत पर थू !

मियाँ।—(घबड़ाकर) तब तब।

पागल—इस पर सब यवन बहुत बिगड़े। चारों ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे। महाराज ने कहा इस बन्धन में मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से लोहे के पिंजड़े का डण्डा खींचकर उखाड़ लिया और पिंजड़े के बाहर निकल उसी लोहे के डण्डे से सताईस यवनों को

मारकर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग किए । हाय ! (रोता है)

मियाँ—(चारों ओर देखकर) और अब क्या होता है ? महाराज का शरीर कहां है ? तुमने यह सब कैसे जाना ?

पागल—सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना । इसी भेष में घूमते हैं । महाराज का शरीर अभी पिंजड़े में रक्खा है । कल जशन होगा । कल सब शराब पीकर मस्त होंगे । (चारों ओर देखकर) कल ही अवसर है ।

मियाँ—तो कुमार सोमदेव और महारानी से हम जाकर यह वृत्त कह देते हैं, तुम इन्हीं लोगों में रहना ।

पागल—हाँ, हम तो यहीं हुई हैं । (रोकर) हम अब स्वामी के बिना वहाँ जाकर ही क्या करेंगे !

मियाँ—हाय ! अब भारतवर्ष की कौन गति होगी ? अब त्रैलोक्य-ललाम सुता भारत कमलिनी को यह दुष्ट यवन यथा सुख दलन करेंगे । अब स्वाधीनता का सूर्य्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करेगा । हाय ! परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है । हाय ! धार्मिक वीर पुरुष की यह गति !

(उदास स्वर से गाता है)

(बिहाग)

कहाँ करुनानिधि केसव सोए !
जागत नेक न यदपि बहुत बिधि भारतवासी रोए ॥

इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए।
इतके पसु गज कों आरत लखि आतुर प्यादे धाए ॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई।
अपनी संपति जानि इनहि तुम रह्यौ तुरंनहि धाई ॥
प्रलयकाल सम जौन सुदरसन असुर प्रान संहारी ।
ताकी धार भई अब कुण्ठित हमरी बेर मुरारी ॥
दुष्ट यवन बरबर तुव संतति घास साग सम काटैं ।
एक-एक दिन सहस-सहस नर-सीस काटि भुव पाटैं ॥
ह्वै अनाथ आरत कुल-विधवा बिलपहिं दीन दुखारी ।
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी ॥
कहाँ गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई ।
भक्तबछल करुनानिधि तुम कहँ गायो बहुत बनाई ॥
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई ।
सब विधि बूड़त लखि निज देसहि लेहु न अबहुं बचाई ॥

(दोनों रोते हैं)

(जवनिका गिरती है)

सातवां अंक

स्थान--राजा सूर्यदेव के डेरे

(एक भीतरी डेरे में रानी नीलदेवी बैठी हैं और बाहरी डेरे में क्षत्री लोग पहरा देते हैं)

नील०—(गाती और रोती हुई)

तजी मोहि काके ऊपर नाथ !
मोहि अकेली छोड़ि गए तजि बालपने को साथ ॥
याद करहु जो अगनि साखि दै पकर्यो मेरो हाथ ।
सो सब मोह आज तजि दीनो कीनो हाय अनाथ ॥

प्यारे क्यों सुधि हाय बिसारी ?
दीन भई बिछुरी हम डोलत हा हा होय तुमारी ॥
कबहुं कियो आदर जा तन को तुम निज हाथ पियारे ।
ताही की अब दीन दसा यह कैसे लखत दुलारे ॥
आदर के धन सम जा तन कहँ निज अंकम तुम धार्यौ ।
ताही कहँ अब पर्यो धूर में कैसे नाथ निहार्यौ ॥

प्यारे कितै गई सो प्रीति ?
निठुर होइ तजि मोहि सिधारे नेह निबाहन रीति ॥
कह्यो रह्यो जो छिन नहिं तजहैं मानहु बचन प्रतीति ।
सो मोहि जीवन लौं दुख दीनो करी हाय विपरीत ॥

(कुमार सोमदेव चार राजपूतों के साथ बाहरी डेरे में आते हैं)

सोम०—भाइयो ! महाराज का समाचार तो आप लोगों ने सुना। अब कहिए क्या कर्त्तव्य है ? मेरी तो शोक से मति विकल हो रही है । आप लोगों की जो अनुमति हो, किया जाय।

प० राज०—कुमार ! आप ऐसी बात कहेंगे कि शोक से मति विकल हो रही है तो भारतवर्ष किसका मुँह देखेगा ! इस शोक का उत्तर हम लोग अश्रुधारा से न देकर कृपाणधारा से देंगे।

दू० राज—बहुत अच्छा !!! उन्मत्त सिंह, तुमने बहुत अच्छा कहा। इन दुष्ट चांडाल यवनों के रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर लेंगे, हम कुमार की शपथ करके प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि हम पितृ-ऋण से कभी उऋण न होंगे।

ती० राज०—शाबास ! विजयसिंह, ऐसा ही होगा । चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय, परन्तु आकल्पांत लोह-लेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट यवनों के हृदय पर लिखी रहेगी। धिक्कार है उस क्षत्रियाधम को, जो इन चांडालों के मूलनाश में न प्रवृत्त हो।

चौ० राज०—शत बार धिक्कार है, सहस्र बार धिक्कार है उस को, जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी तरह इन कापुरुषों

से डरे। लक्ष बार, कोटि बार धिक्कार है उसको, जो इन चांडालों के दमन करने में तृण-मात्र भी त्रुटि करे। (बायाँ पैर आगे बढ़ाकर) म्लेच्छ-कुल के और उसके पक्षपातियों के सिर पर यह मेरा बायाँ पैर है, जो शरीर के हजार टुकड़े होने तक ध्रुव की भाँति निश्चल है, जिस पामर को कुछ भी सामर्थ्य हो हटावे।

सोम०—धन्य आर्य्यवीर पुरुषगण! तुम्हारे सिवा और कौन ऐसी बात कहेगा। तुम्हारी ही भुजा के भरोसे हम लोग राज्य करते हैं। यह तो केवल तुम लोगों का जी देखने को मैंने कहा था। पिता की वीरगति का शोक किस क्षत्रिय को होगा? हाँ जो हम लोग इन दुष्ट यवनों का दमन न करके दासत्व स्वीकार करें, तो निस्संदेह दुख हो। (तलवार खींचकर) भाइयो! चलो इसी क्षण हम लोग उस पामर नीच यवन के रक्त से अपने आर्य्य पितरों को तृप्त करें।

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन रंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधो।
केसरिया बनो सजि सजि रनकंकन बाँधो॥
जौ आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृहकलहहि अपनी कुल-मरजाद विचारैं॥

छन महँ नासहिं आर्य्य नीचे जवनन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

सब वीर—भारतवर्ष की जय, आर्यकुल की जय, महाराज सूर्य्यदेव की जय, महारानी नीलदेवी की जय, कुमार सोमदेव की जय, क्षत्रियवंश की जय।

(आगे-आगे कुमार उस के पीछे तलवार खींचकर क्षत्रिय लोग चलते हैं। रानी नीलदेवी बाहर के घर में आती है)

नील०—पुत्र की जय हो। क्षत्रिय-कुल की जय हो। बेटा, एक बात हमारी सुन लो, तब युद्ध-यात्रा करो।

सोम०—(रानी को प्रणाम करके) माता! जो आज्ञा हो।

नील०—कुमार, तुम अच्छी तरह जानते हो कि यवन-सेना कितनी असंख्य है और यह भी भली भाँति जानते हो कि जिस दिन महाराज पकड़े गए उसी दिन बहुत से राजपूत निराश होकर अपने अपने घर चले गए। इससे मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इनसे एक ही बार सम्मुख युद्ध न करके कौशल से लड़ाई करना अच्छी बात है।

सोम०—(कुछ क्रोध करके) तो क्या हम लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं कि यवनों को युद्ध में लड़कर जीतें?

सब क्षत्री—क्यों नहीं?

नील०—(शांत भाव से) कुमार तुम्हारी सर्वदा जय है। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा कहीं पराजय नहीं है। किंतु

मां की आज्ञा मानना भी तो तुमको योग्य है।

सब क्षत्री—आवश्य, अवश्य।

सोम०—(हाथ जोड़कर) मां, जो आज्ञा होगी वही करूँगा !

नील०—अच्छा सुनो। (पास बुलाकर कान में सब विचार कहती हैं)

(एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती हैं)

(जवनिका गिरती है)

आठवां अंक

स्थान—अमीर की मजलिस

(अमीर गद्दी पर बैठा है। दो-चार सेवक खड़े हैं। दो-चार मुसाहिब बैठे हैं। सामने शराब के पियाले, सुराही, पानदान, इतरदान रखा है। दो गवैए सामने गा रहे हैं। अमीर नशे में झूमता है)

गवैए—आज यह फतह का दरबार मुबारक होए।
मुल्क यह तुझ को शहरयार मुबारक होए॥
शुक्र सद शुक्र कि पकड़ा गया वह दुश्मनेदीन।
फत्ह अब हमको हरेक बार मुबारक होए॥
हमको दिन-रात मुबारक हो फत्ह हो।
ऐशो उरूज काफिरों का सदा फिटकार मुबारक होए॥
फत्हे पंजाब से सब हिंद की उम्मीद हुई।
मोमिनो नेक य आसार मुबारक होए॥
हिंदू गुमराह हों बेजर हों बनें अपने गुलाम।
हमको ऐशो तरबोतार मुबारक होए॥

अमीर—आमीं आमीं। वाह-वाह वल्लाही खूब गाया। कोई है? इन लोगों को एक-एक जोड़ा दुशाला इनाम दो। (मद्यपान)

(एक नौकर आता है)

नौकर—खुदामंद निश्रामत ! एक परदेस की गाने वाली, बहुत ही अच्छी, खेमे के दरवाजे पर हाजिर है। वह चाहती है कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए। जो इरशाद हो बजा लाऊँ।

अमीर—जरूर लाओ। कहो साज मिला कर जल्द हाजिर हो।

नौकर—जो इरशाद। [जाता है]

अमीर—आज के जशन का हाल सुन कर दूर-दूर से नाचने-गानेवाले चले आते हैं।

मुसाहिब—बजा इरशाद है, और उनको इनआम भी तो बहुत जियादः मिलता है, न क्यों आवें ?

(चार बजाने वालों के साथ एक गायिका का प्रवेश)

अमीर—(आप ही आप) यह गानेवाली तो बहुत ही खूबसूरत है ! (प्रगट) तुम्हारा क्या नाम है ? (मद्यपान)

गायिका—मेरा नाम चण्डिका है। मैं बड़ी दूर से आप का नाम सुनकर आती हूँ।

अमीर—बहुत अच्छी बात है। जल्द गाना शुरू करो। तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इश्तियाक हर लहजे बढ़ता जाता है। जैसी तुम खूबसूरत हो वैसा ही तुम्हारा गाना भी होगा। (मद्यपान)

गायिका—जो हुकुम। (गाती है)

(ठुमरी तीताला)

हाँ, मोसे सेजिया चढ़लि नहिं जाई हो।
पिय बिनु साँपिनी सी डसै बिरह रैन॥
छिन-छिन बढ़त बिथा तन सजनी,
कटत न कठिन बियोग की रजनी।
बिनु हरि अति अकुलाई हो॥

अमीर—वाह-वाह क्या कहना है! (मद्यपान) क्यों फिदा-हुसैन! कितना अच्छा गाया है।

मुसाहिब—सुबहान अल्लाह! हुजूर क्या कहना है। वल्लाह मेरा तो क्या जिक्र है मेरे बुजुर्गों ने ख्वाब में भी ऐसा गाना नहीं सुना था।

(अमीर अंगूठी उतार कर देना चाहता है)

गायिका—मुझ को अभी आप से बहुत कुछ लेना है। अभी आप इसको अपने पास रखें, अखीर में एक साथ मैं सब ले लूँगी।

अमीर—(मद्यपान करके) अच्छा! कुछ परवाह नहीं। हाँ, इसी धुन की एक और हो, मगर उस म फुरकत का मजमून न हो क्योंकि आज खुशी का दिन है।

गायिका-जो हुकुम! (उसी चाल में गाती है)

जाओ जाओ काहे आओ प्यारे कतराए हो।
काहे चली छाँह से छाँह मिलाए हो॥
जिय को मरम तुमसाफ कहत किन काहे फिरत मड़राए हो।—

अमीर—(मद्यपान करके अत्यन्त रीझना नाट्य करता है) कसम खुदा की ऐसा गाना मैंने आज तक नहीं सुना था। दरहकीकत हिन्दोस्तान इल्म का खजाना है। वल्लाह, मैं बहुत ही खुश हुआ।

(मुसाहिबगण वल्लाह, बजा इरशाद, बेशक इत्यादि सिर और दाढ़ी हिला-हिलाकर कहते है)

अमीर—तुम शराब नहीं पीतीं ?

गायिका—नहीं हुजूर।

अमीर—तो आज हमारी खातिर से पीओ।

गायिका—अब तो आप के यहाँ आई हूँ। ऐसी जल्दी क्या है। जो-जो हुजूर कहेंगे सब करूँगी।

अमीर—अच्छा कुछ परवाह नहीं। (मद्यपान) थोड़ा और आगे बढ़ आओ।

(गायिका आगे बढ़कर बैठती है)

अमीर—(खूब घूरकर स्वगत) जिस तरह हो, आज ही इसको काबू में लाना है। (प्रगट) वल्लाह, तुम्हारे

गाने ने मुझको बेअख्तियार कर दिया है। एक चीज और इसी धुन की।

(मद्यपान)

गायिका—जो हुकुम। वही गीत गाती है)

अमीर—(मद्यपान करके उन्मत्त की भाँति) वाह-वाह! क्या कहना है। (गिलास हाथ में उठा कर) एक गिलास तो अब तुमको जरूर ही पीना होगा। लो तुमको मेरी कसम, वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ।

गायिका—हुजूर, मैंने आज तक शराब नहीं पी है। मैं जो पीऊँगी तो बिल्कुल बेहोश हो जाऊँगी।

अमीर—कुछ परवा नहीं पीओ।

गायिका—(हाथ जोड़ कर) हुजूर, एक दिन के वास्ते शराब पीकर मैं क्यों अपना ईमान छोड़ूँ ?

अमीर—नहीं नहीं, तुम आज से हमारी नौकर हुई, जो तुम चाहोगी तुमको मिलेगा। अच्छा हमारे पास आओ। हम तुमको अपने हाथ से शराब पिलावेंगे।

(गायिका अमीर के अति निकट बैठती है।)

अमीर—लो!

(पियाला उठा कर अमीर जिस समय गायिका के पास ले जाता है, उसी समय गायिका बनी हुई नीलदेवी चोली से कटार निकाल कर अमीर को मारती है और चारों गायक बाजा फेंक-कर शस्त्र निकालकर मुसाहिब आदि को मारते हैं)।

नीलदेवी—ले चाँडाल पापी ! मुझको बुरी दृष्टि से देखने का फल ले, महाराज के वध का बदला ले। मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चाँडाल का अपने हाथ से वध करूँ। इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका, सो इच्छा पूर्ण हुई। (और आघात) अब मैं सुखपूर्वक सती हूँगी।

अमीर—(मरते हुए) दग़ा—वल्लाह चंडिका—

(रानी नीलदेवी ताली बजाती है। तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं। मुसलमानों को मारते और बाँधते हैं। क्षत्री लोग भारतवर्ष की जय; आर्य्यकुल की जय; क्षत्रियवंश की जय; महाराज सूर्य्यदेव की जय; महारानी नीलदेवी की जय; कुमार सोमदेव की जय; इत्यादि शब्द करते हैं।)

(जवनिका गिरती है)

———

उत्सर्ग

(लेखक–आचार्य्य चतुरसेन शास्त्री)

नाटक के प्रधान पात्र

पुरुष

अकबर	... ...	दिल्ली के सम्राट्
जयमल	... ...	चित्तौर के अधिपति
पेरवसिंह	... ...	जयमल के भविष्य जामाता
बीरबल अब्बुलफ़ज़ल अब्दुलक़ादिर टोडरमल	}	अकबर के दर्बारी
सलावतख़ाँ	... ...	अकबर के सेनापति

सिपाही, चोबदार आदि

स्त्री

रानी	... ...	जयमल की स्त्री
अखिला	... ...	जयमल की बड़ी कन्या
कमला	... ...	जयमल की छोटी कन्या

अन्य राजपूतानियाँ

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—चित्तौड़ के निकट का देवी का मन्दिर

समय—प्रातःकाल

(अखिला श्वेत वस्त्र धारण किए, पुष्पाभूषणों से अलंकृत, मधुर स्वर से देवी स्तवन कर रही है)

गायन—(धुन भीम पलासी)

भूलि जनि अवला मात करो।

वीर जननि और वीर सुता को, अवला नाम वुरो ॥ भूलि० ॥
पजरे भानु तेजसों जिनके, धरणि धमक धँसि जात।
तिनकी तिय अबला कहलावें, महा अपूरब बात ॥ भूलि० ॥
सुत पति पिता नामतें, हम नहिं चाहत सुयश सुनाम।
स्वयं सतेज क्षत्रिया वीरा, सवला वनें ललाम ॥ भूलि० ॥
अटल छत्र में वीर भूमि की, वीर-प्रसविनी वाम।
रणचण्डी रणशक्ति होय, रिपु-दलन करें अविराम ॥ भूलि० ॥

(पेरवसिंह का प्रवेश)

पेरवसिंह—(स्वगत) वाह ! कैसा मुग्धकारी गान है। जैसा स्वरूप, वैसा ही स्वर। जैसा स्वर, वैसा ही विषय। जैसा विषय, वैसा ही भाव (आगे बढ़कर प्रकट में) अखिले,

अखिले, तुम यह क्या गा रही हो ?

अखिला—(चौंककर पूजा-स्थान से उठती हुई) पेवरसिंह तुम यहाँ ?

पेवरसिंह—(हँसकर) हाँ, मैं यहाँ, क्या अचरज होता है ?

अखिला—(गम्भीरता से) नहीं, अचरज नहीं। क्या तुम माता का दर्शन करने आए हो ? अच्छा आगे बढ़ो—यह लो पुष्प-गन्ध मा को चढ़ा दो।

पेरव—(हँसता हुआ) मैं तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ।

अखिला—(बहुत गम्भीर होकर) यह समय हँसने का नहीं है, मुगल सम्राट् दिल्ली से चित्तौड़ पर आक्रमण के लिये चल चुके हैं। परीक्षा निकट ही है, सावधान होकर जाओ।

(प्रस्थान)

पेरव—(चकित-भीत होकर) ओफ़ ! कैसा तेज है, सचमुच वीरांगना है, इसी से तो मेरा व्याह होगा ? भगवान्, मैं व्याह के लिये चितौड़ आया हूँ। पर क्या सचमुच युद्ध की आँधी निकट है ? ओह ! यह सामने अति दूर, इसी तूफ़ान के लक्षण दीख रहे हैं। कैसा भीषण भविष्य है। वह आई ! वह आई ! वह आ रही है ! वह भीषण रव उठ रहा है—वह प्रलयंकारी आँधी सचमुच आ रही है। व्याह ! व्याह कहाँ है ? मंगलकलश, तुरही, कहीं भी तो कुछ नहीं दीखता। दीखता है वही भीषण भविष्य। बस, वही भीषण भविष्य ! वह आई, वह आई।

(बड़बड़ाता हुआ जाता है)

दूसरा दृश्य

स्थान—राजमहल का आँगन

समय—दोपहर

(रानी का अस्थिर चित्त से प्रवेश)

रानी—(पुकारकर) अखिले, अखिले, अरे ! कहाँ गई बेटी ?

(इधर-उधर देखती है)

अखिला—(बाहर से आकर) माता, क्या आज्ञा है ?

रानी—बेटी, कहाँ गई थी ?

अखिला—पूजा करने, माता के मन्दिर में।

रानी—बस। अब मानसी-पूजा बन्द करो, वाचा-पूजा भी बन्द करो। अब कर्म की पूजा का समय आ गया है, सावधान !

अखिला—क्या और कुछ नया समाचार मिला है ?

रानी—सब नया ही है। अब की बार स्वयं सम्राट् अकबर आए हैं।

अखिला—आए हैं ? अच्छी बात है; अब की बार वे स्वयं राजपूतानियों की शक्ति देख जायँ।

(जयमल का प्रवेश)

जयमल—(मुसकिरा कर) तुम लोग यहाँ गपशप उड़ा रही हो ?

रानी—(गम्भीरता से) हमें आज्ञा दीजिए, प्राण रहते हम अपना कर्तव्य पालन करेंगी।

जयमल—(हँसकर) अरे ! अभी से इतनी गम्भीरता ? प्रिये, चिन्ता किस बात की है ?

रानी—महाराणा के विचार आप को प्रकट ही हैं, उन्हीं का डर है।

जयमल—(मुसकिरा कर) कुछ नहीं। महाराणा को कुछ भय नहीं है। उन्होंने कल रात दुर्ग त्याग दिया है। अब वे अर्वली की दुर्गम गोद में सुरक्षित हैं।

रानी—(आश्चर्य से) ऐं ! क्या सचमुच ? महाराणा ने दुर्ग त्यागा ? छिः। (ग्लानि से) अच्छी बात है, कोई चिन्ता नहीं। मेवाड़ महाराणा के ऊपर गर्व नहीं करता। जब महाराणा गर्भ में एक निर्जीव माँस-खण्ड थे, उस से बहुत प्रथम से मेवाड़ अपनी आन को निभाता चला आया है।

जयमल—प्रिये, शाँत हो ! मैं अभी चित्तौड़ में ही हूँ। यह दुर्ग है, और वीर सीसोदिया हैं। चित्तौड़ की आन पर जूझने को यह बहुत हैं। पर क्या तुम लोगों को भय मालूम होता है ?

रानी—(सतेज स्वर में) स्वामिन, मैं और मेरी पुत्री भी क्षत्राणियाँ हैं। (अखिला से) अखिले, क्या तू डरती है ?

अखिला—नहीं मा, (बन्दूक के शब्द होने से चमक कर) क्या आक्रमण हुआ ?

जयमल (जल्दी से) प्रतीत तो ऐसा ही होता है। बहुत-सी बन्दूकों का एक साथ शब्द) लो आक्रमण हुआ, प्रिये,

धैर्य रखना। कदाचित् मुझे आश्वासन देने को समय न मिले। पांच सहस्र सीसोदिया महल की रक्षा को नियुक्त हैं और तुम्हीं उनकी अधिनायिका हो। (तोपों का भीषण गर्जन) लो मैं चला, श्रीएकलिंग तुम्हारे रक्षक हैं।

(तेज़ी से प्रस्थान)

रानी—(क्षणिक उद्वेग से स्वामी की ओर दौड़ने की चेष्टा करती है। किंतु फिर शांत होकर-अखिला का हाथ पकड़ कर) बेटी, चलो हम भी अपना कार्य करें। देखना, हमारी क्षत्रिय जाति है और अग्नि हमारा पिता। वसुंधरा हमारी मां है। आन हमारा जीवन है, पवित्रता हमारा पुण्य! वलिदान हमारा कृत्य है, और दृढ़ता हमारा धर्म है। चलो चलें।

(तेज़ी से प्रस्थान)

——

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—शाही शिविर

(अपने खेमे में बादशाह अकेला टहल रहा है)

बादशाह—(स्वगत) खैर देखा जायगा। दिल हटता है, मगर यह हमेशा का बुज़दिल है। न मानूँगा-हरगिज न मानूँगा। अगर सचमुच ये हिन्दू लोग अपनी आज़ादी के इच्छुक होते, तो मेरी सल्तनत कब की धूल में मिल गई होती। यह शेर का बच्चा मानसिंह ! यह नायब मुन्तज़िम टोडर-मल, बीरबल, इनमें से हरएक की ताक़त मेरी तमाम बादशाहत के बराबर है—मगर ये सब ईंजानिब के फ़र्माबरदार हैं। तब क्या चित्तौड़ में कुछ नई हवा बहती है ? कुछ नहीं। यह आज़ादी की डींग है। आज़ाद शाहंशाह रहेगा। चित्तौड़ को फ़तह करूंगा। मगर ?............... (सोचता है) ख़ैर, मुज़ायक़ा क्या है। अकबर के दिमाग़ में घर की अक्ल चाहिए—काँटे-से-काँटा निकालूँगा। (सोचकर) देखा जायगा। (इधर-उधर टहलता है, कुछ देर बाद पुकार कर) कोई है ?

चोबदार—जहाँपनाह ! गुलाम हाज़िर है।

बादशाह—राजा साहब और अमलों को बुला।

चोबदार—जो हुक्म।

(प्रस्थान)

(बीरबल, अब्बुलफ़ज़ल, अब्दुलक़ादिर, टोडरमल का प्रवेश)

(बादशाह तख्त पर बैठता है, सब सर्दार यथास्थान बैठते हैं)

अकबर—(बीरबल से) राजा साहब, जैसा कि मैं कई बार कह चुका हूँ—मेरा मक़सद किसी की आज़ादी छीनने का नहीं है। न मुझे मज़हबी तअस्सुब ही है। बल्कि मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान एक मुत्तहदा ताक़त बन जाय और वह एक ही ऐसी ताक़त का ज़हूर पैदा कर ले कि जो वक्त ज़रूरत दुनिया के मुक़ाबिले उसकी कहलाए।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(ज़मीन चूमकर) अब्बुलफ़ज़ल जलालुद्दीन शहंशाह की फ़तह हो।

बादशाह—(दूत से) कहो, क्या खबर है ?

दूत—सिर्फ़ एक जवाब है खुदावंद,—सिर देंगे, आज़ादी नहीं। मर मिटेंगे, मगर आन न छोड़ेंगे। एक-एक बात का जवाब तलवार हैं। सिर्फ़ तलवार।

(सब चिंतित होते हैं, अब्दुलक़ादिर प्रसन्नता का नाट्य करता है—बादशाह सिर नीचा करके सोचता है)

बादशाह—(चैतन्य होकर) तो फिर मजबूरी है। एक ही बात

है जंग। अच्छा, सिपहसालार को हाज़िर करो।

(सिपाही का प्रस्थान)

(सिपहसालार का प्रवेश)

सिपहसालार—(कोर्निश करके) ख़ुदावंद, बन्दा हाज़िर है।

बादशाह—फ़ौज का क्या हाल है ?

सिपहसालार—हुज़ूर, सब तरह लैस है।

बादशाह—(उठते हुए) कल सुबह क़िले पर हमला होगा, राजा बीरबल तमाम फ़ौज की कमान लेंगे। समझे ? जाओ।

सिपहसालार—जो हुक्म बंदानिवाज़।

(प्रस्थान)

बीरबल—(हाथ जोड़कर) राजा साहब, अपने दोस्त अकबर के लिये यह तकलीफ़ गवारा करें। उम्मीद है, जैसा भरोसा है, वैसा ही काम भी होगा। अब आराम कीजिए काम बहुत है।

(प्रस्थान—बीरबल सिर नीचा किए थोड़ी देर खड़े रहते हैं; फिर धीरे-धीरे पछताते हुए जाते हैं।

दूसरा दृश्य

स्थान—-चित्तौड़ के दुर्ग का प्रान्त-भाग।

समय-मध्याह्न

(चित्तौड़ का अधिपति अकेला सोचता है)

जयमल—(स्वगत) आज छः सप्ताह होगए। बादशाह अकबर ने

क़िले को सब ओर से घेर रक्खा है। बादशाह का साहस अद्वितीय है, और सेना असंख्य है। वह सब तरह से सुसज्जित और शिक्षित है। छः सप्ताह के घनघोर युद्ध ने कुछ अच्छा फल नहीं दिखाया, उलटी क्षीणता बढ़ गई है। अब मेरे पास केवल नौ हज़ार योद्धा रह गए हैं—केवल नौ हजार। (चिंतित होकर टहलता है) केवल नौ हज़ार (ठहरकर) बादशाह की असंख्य सेना के सामने ये समुद्र में बूँद के समान हैं। बूँद भी नहीं। फिर नई-नई सेना चली आ रही है। केवल नौ हज़ार सिपाही! और यह दुर्ग!!

(चिंता से टहलता है)

(रानी का प्रवेश)

रानी—स्वामिन्, क्या यवन विजयी होंगे?

जयमल—कह नहीं सकता उनका स्वामी अत्यंत वीर है।

रानी—क्या दुर्ग में उसकी जोड़ का एक भी वीर नहीं?

जयमल—प्रिये, मेरा अभिप्राय दुर्ग के वीरों को अपमानित करने का नहीं है। किंतु अकबर वीर भी है और बुद्धिमान् भी।

रानी—(विचार कर) क्या इससे प्रथम हमने ऐसी घटनाओं का सामना नहीं किया?

जयमल—अवश्य, पर परिणाम सब घटनाओं का एकसा नहीं होता।

रानी—तो क्या आपको आशा है कि म्लेच्छ जीतेंगे ?

जयमल—सुनो, राजपूत कभी हताश नहीं होते। और मैं वीरता से अन्त तक उसका सामना करने को तैयार हूँ।

रानी—स्वामिन्, अकबर को मालूम नहीं है कि दुर्ग में स्त्रियाँ भी प्रस्तुत हैं। उन वीरांगना, वीर-माता और वीर-पुत्रियों का सामना करना सहज नहीं है। क्या वीरांगनाओं के तेज का उसे ज्ञान नहीं है ?

जयमल—(हँसकर) प्रिये, अपने कटाक्ष से मुझ मूर्ख को विजय कर के ही यवन-राज पर भी विजय का हौसला रखती हो ?

रानी—महाराज, यह हास्य का अवसर नहीं है। मैं आपकी एक साधारण प्रजा की हैसियत से यह प्रमाण देना चाहती हूँ कि देशरक्षा में एक स्त्री भी समर्थ हो सकती है।

जयमल—(रानी की ओर देखकर) तो तुम क्या चाहती हो ?

रानी—शत्रु के डेरे पर जाने के लिये आपकी अनुमति।

जयमल—(चकित होकर) शत्रु के डेरे पर ? इसका क्या मतलब ?

रानी—मतलब यह है कि मैं यह देखूँगा कि स्त्री की खड्ग की धार भी कैसी तेज़ है।

जयमल—प्यारी, यद्यपि देश पर न्योछावर होने के लिये इस से भी अधिक आत्म-त्याग और साहस की आवश्यकता है, पर तुम्हारा साहस शक्ति के बाहर का है ! शत्रु के डेरे

पर ? ना-ना-ना, तुम भीतर जाओ, अभी मुझे बहुत काम है।

रानी—नाथ, क्या आपको मेरे मनोबल पर विश्वास नहीं है ?

जयमल—ईश्वर न करे कि मैं कभी ऐसा पाप करूँ।

रानी—तो क्या आपको मेरे बाहु-बल पर अविश्वास है ?

जयमल—कदापि नहीं; तुम मेरी सहधर्मिणी हो।

रानी—(तैश में आकर) तो देव, मुझे यवन-शिविर में जाने दीजिए। मैं अकेली मेवाड़ का उद्धार करूँगी।

जयमल—(कुछ सोचकर) तो जाओ, यदि तुम्हारे ही भाग्य में मेवाड़ की भाग्य-लक्ष्मी होना बदा है, तो जाओ शत्रु का नाश करो। भगवान् तुम्हारे रक्षक हों। (दीर्घ निःश्वास फेंकता है)।

रानी—(कुछ देर खड़ी रहकर, विकलता से) स्वामिन, मेरी बच्चियां तुम्हारे सुपुर्द हैं। (आंसू भर आते हैं। उन्हें हठात् रोक कर) वे अपने कठोर-से-कठोर व्रत से भी न डिगने पावें।

(दर्प से प्रस्थान)

जयमल—अहा ! यह हाड़ा-वंश की राजपूतनी और मेरी स्त्री है। यह तेज, यह त्याग, यह पौरुष, मेरी ही स्त्री को शोभा देता है। यह चित्तौड़, यह दुर्ग, यह पर्वत-वन, सब इसी के है। अच्छा देखूँ, क्या होता है (दूर तक झाँककर) गई ?—गई। अच्छा, श्रीएकलिंग तेरे साथ हैं।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—दक्खिन का मोर्चा।

समय—मध्यान्ह

(घनघोर युद्ध। दुर्ग की दीवारों पर जयमल वीरों को उत्साह देते फिर रहे हैं)

जयमल—शाबाश ! मेरे वीरो, तुमने सचमुच क्षत्राणियों का दूध पिया है । मारे जाओ प्यारे। (दूसरी ओर फिर कर) पेरवसिंह, तुमने वीरता की हद कर दी। चित्तौड़ की ये दुर्गम पहाड़ियाँ तुम्हारी वीर-विरुदावली को वायु में गुंजा कर तुम्हारी सन्तानों को सुनाएँगी। मारे जाओ, मारे जाओ । मारने के लिये इतने शत्रु कभी नहीं मिलेंगे।

सब योद्धा—महाराज की जय ! मेवाड़ की जय !! श्रीएक-लिंग की जय !!!

(एकाएक भीषण कड़कड़ाहट)

पश्चिम की दीवार सुरंग से उड़ जाती है । खूब धूल उड़ती है। सब घबराकर चिल्लाते हैं)

जयमल—(शांति से) कोई चिन्ता नहीं। अब हमारी छातियों की दिवारें......(एकाएक गोली सिर में लगने से जयमल गिर जाते हैं। चारों ओर हाहाकार)

जयमल—(कुछ देर बाद होश में आकर तेज़ स्वर से) कोई चिंता

नहीं, मारे जाओ—कठिन मार मारो। शत्रु यह न समझे कि चित्तौड़ का बल एक व्यक्ति पर है। सावधान! दम्मामा बनने न पावे। इस्माइल, क्या तुम्हारी बन्दूक़ बन्द हो गई? मुझे शब्द नहीं सुन पड़ता। पेरव, पेरव, क्या तुम्हारा जयोल्लास ठंडा पड़ गया? कुछ सुनाई नहीं देता। ऐं! क्या आँधी आई? फ़तहसिंह, फ़तहसिंह! ओफ़! (फ़तहसिंह दौड़कर आते हैं) फ़तहसिंह! लो मेरा अन्त.........। तुम्हें दुर्ग सुपुर्द।.........सावधान...... चित्तौड़ की नाक...(स्वर क्षीण हो जाता है। सब रोते हैं। मुँह पर पानी छिड़कते हैं। पुनः चैतन्य) छिः! युद्ध के समय स्त्री रोदन.........फ़—त—ह.........

(मृत्यु)

[पटाक्षेप]

———

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—मार्ग

समय—अपराह्न

(गायकी के वेश में रानी का प्रवेश)

गायन विहाग

अब मोरी बिगरी कौन बनाए।
चहुँ दिशि ते विकराल काल-सम,
अन्धर बादर छाए। अब०
भभक भयंकर भँवर उठत है,
पग-पग चहत डुबाए;
खेवट खे निर्बल भए सिगरे,
रिपु पतवार हताए। अब०
आशा-शशि की अपट ज्योति लघु,
घन घिरि चहत छिपाए;
अब एक डोर तुमहिं सों लागी,
नैया पार लगाए। अब मोरी०

रानी—(घूमकर) बस अब मुझे कोई नहीं पहचानेगा। राज-प्रतिष्ठा राज-महल में रह गई। अब मैं रानी नहीं, *गायिका*

हूँ। मेरा उद्देश्य शत्रु को रिझाना है। छिः चित्तौड़ की रानी आज नर्तकी बनी है! अब वह रानी नहीं, गायिका है। जो गायन मैंने अपने पति को मुग्ध करने के लिये बड़े परिश्रम से सीखा था, उसीसे आज यवन-सम्राट् को मोहूँगी। हाँ, अवश्य मोहूँगी। पर उसमें इतना अन्तर रहेगा कि पति का मन चाहती थी, और शत्रु का प्राण चाहती हूँ। (आकाश की ओर देखकर) स्वामिन्, दुखी न होना, तुम्हें मेरी प्रतीक्षा करनी होगी। मुझे अभी काम है। शीघ्र नहीं आ सकती। (कुछ देर चुप रहकर) तो चलूँ, सामने ही तो यवन शिविर है।

(कुछ आगे बढ़कर, पहरेदार से)

रानी—तुम पहरे पर हो? घनचक्कर! सोते हो?

पहरे०—(सचेत होकर) तुम कौन हो? क्या चाहती हो?

रानी—(बड़े रोब के साथ) मुझे शाहँशाह के पास ले चलो।

पहरे०—हुक्म नहीं है?

रानी—मैं शाहन्शाह को बीन सुनाऊँगी। इस मुल्क की मैं सब से बड़ी नर्तकी हूँ। मुझे जो कुछ मिलेगा उस में तुम को हिस्सा दूँगी।

पहरे०—तो फिर जैसा आप कहें।

रानी—बस, चुपचाप मेरे आगे-आगे चलो। कोई पूछे, तो कह देना—बादशाह के हुक्म से लिये जाता हूँ। तुम दूर से डेरा दिखाकर चले आना। फिर पहुँचकर मैं जब बादशाह

से तुम्हारी सिफ़ारिश करूँगी, तो तुम्हें खिलअ़त देने को खुद ही बुलावेगा। बस उठो, देर में मामला बिगड़ता है। कोई दूसरा आ गया, तो उसी की क़िसमत खुल जायगी।

पहरे०—ऐसा है! तब चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

———

दूसरा दृश्य

स्थान—यवन-शिविर।

समय – रात्रि

(बादशाह अपने खीमे में अकेला बैठा है)

अकबर—(स्वगत) छः हफ्ता हो गया, मगर फ़तह हाथ नहीं आती। यह छोटी-सी रियासत फ़तह करने की शान मेरी तमाम बादशाहत की शान से ऊँची रहेगी। मगर वाह री बहादुरी, शाबाश! ये शेर-सिपाही अगर मुझे मिल जायँ तो मैं तमाम दुनियाँ को फ़तह कर सकता हूँ। इन मुट्ठी-भर बहादुरों की बहादुरी तस्वीर की मानिन्द देखने की चीज़ है।

(सोचता हुआ टहलता है)

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—(ज़मीन चूमकर) खुदावंद!

बादशाह—(झुँझलाकर) क्या है?

चोबदार—जहाँपनाह, एक निहायत हसीन औरत कदमबोसी चाहती है।

अकबर—औरत! (ताज्जुब से) किस लिये? कौन है वह?

चोबदार—एक गानेवाली है। हुजूर को खुश करके इनाम चाहती है।

बादशाह—(सोचकर) गानेवाली? इस लड़ाई के मैदान में गानेवाली! (स्वगत) इसके क्या मानी! (ठहर कर) अजीब है। कुछ दाल में काला है। गानेवाली? (प्रकट) क्या वह हिन्दू है? वह अपने को किस मुल्क की बताती है?

चोबदार—आला हज़रत! हिन्दू ही है। वह अपने को इसी मुल्क की एक मशहूर गानेवाली बताती है।

अकबर—(कुछ ठहरकर) पहरे पर कौन है?

चोबदार—यही गुलाम अपने ५० सिपाहियों के साथ है।

अकबर—यहाँ तक उसे किस तरह आने दिया?

चोबदार—एक सिपाही उसे पहुँचा गया है।

अकबर—(क्रोध से) सिपाही? उसका नाम लिख लेना। अच्छा औरत को भेज दो, मगर खबरदार रहना।

चोबदार—जो हुक्म।

(प्रस्थान, और गायिका का प्रवेश)

अकबर—(देखकर) यही गायकी है? यह जलालवाला चेहरा, ये हुकूमत की आँखें, यह पुश्तहापुश्त के घमण्ड की चाल।

ओह ! कुछ दाल में काला है। (प्रकट) नाज़नी ! तुम क्या चाहती हो ?

रानी—मैं गायिका हूँ। सुना है, श्रीमान् को जो अपने कर्तब से प्रसन्न कर लेता है, उस को बहुत कुछ पारितोषिक मिलता है। मुझे बीन बजाने का अभ्यास है। मैंने सोचा, शायद श्रीमान् को मेरा बीन अच्छा लगे।

बादशाह—बीन बड़ा अच्छा बाजा है। अगर तुम्हारा बजाना अद्वितीय होगा, तो मैं बेशक खुश होऊँगा। पास आ जाओ, और कोई गत बजाओ।

(रानी आगे बढ़ और दाहिनी ओर बैठकर बीन बजाती है। बादशाह सन्देह की दृष्टि से देखते हैं)

रानी—(बीन बजाकर) श्रीमान् को कदाचित् अच्छा नहीं लगा।

बादशाह—वाह-वाह ! क्या कहना है। सचमुच तुम इस फ़न में बे-मिसाल हो। अच्छा कुछ मुँह से भी सुनाओ। आज तक मैंने ऐसा बीन नहीं सुना। उम्मीद है, गाना भी ऐसा ही होगा।

रानी—(और पास खिसक कर) जो आज्ञा।

(गाती है)

गायन—राग देश

मना रे ! चल अपट अँधेरे देश।

सहस-सहस द्युतिमन उडुगन-सँग, जहँ राजत राकेश।

मना रे०।

निठुर दिन करो दिनकर के मिस, पजरि पजारे लोल।
जगत प्रकाशन के मिस नासे अमित खद्योतन जोत॥
मना रे०।

(बादशाह मस्त होकर झूमता है। अवसर पा रानी एकाएक बिजली की तरह कटार ले बादशाह पर टूट पड़ती है। बादशाह हाथ पकड़ लेता है। सिपाही दौड़े आते हैं।)

(पटाक्षेप)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—शाही शिविर ।

समय—मध्याह्न

(बादशाह अपने दरबारियों-सहित बैठा है)

बादशाह—(आश्चर्य के साथ बीरबल से) क्या यह सच है ?

बीरबल—जहाँपनाह ने जो सुना, सब सच है ।

बादशाह—ताज्जुब ! मुझे तो कयास भी नहीं था कि महज़ दिल बहलाने के तौर पर जो गोली छोड़ी गई थी, वह जयमल का शिकार करेगी ।

बीरबल—ऐसा ही हुआ हुज़ूर ! तो क्या जहाँपनाह को यह खयाल न था कि यह जयमल है ।

बादशाह—मुतलक़ नहीं । दम्मामे पर, जो क़िले तक सुरंग खोदने की सुहूलियत के लिये बनाया था, क़िले से गोले और तीर बरस रहे थे, रिपोर्ट हुई कि कोई मज़दूर राज़ी नहीं होता, इसलिये एक टोकरी मिट्टी डालने की मज़दूरी एक अशर्फी कर दी थी । लेकिन क़िले से दम्मामे पर ऐसी बेढब मार पड़ रही थी कि उसकी वजह से इतने में भी मज़दूर न मिलता था, क्योंकि यह उसकी जान की

क़ीमत थी। तमाम दम्मामे की छत मज़दूरों की लाशों से पट गई थी। इस रिपोर्ट को सुन कर मुझे इस वाक़ए को देखने का शौक़ हुआ। वहाँ जो बहादुरी का जौहर नज़र आया, वह कभी न देखा था। मन में एक लहर आई और अपनी बन्दूक़ उठा कर भीड़ में जो सिर सब से ऊँचा था, उस पर शिश्त बाँधकर फ़ैर कर दी। पीछे सुना कि जयमल ही उस गोली के शिकार हुए।

अब्दुलक़ादिर—(खुश होकर) यह फ़तह का शगुन हुआ। हुज़ूर की गोली बा-इज़्ज़त सर हुई।

बादशाह—मगर एक हादसा और हुआ। कल जयमल की रानी अपने शौहर का बदला लेने आई थी।

सब—(आश्चर्य से) आई थी ? क्या शाही कैंप में ?

बादशाह—ख़ास मेरे डेरे में। और वार कर चुकी थी, मगर मैं शुरू से शक़ में था। ज्यों ही उसने छुरा निकाला और झपटी कि मैंने हाथ पकड़ लिया।

अब्दुलक़ादिर—यहां तक ! तो हुज़ूर ने उसे हाथी के पाँव तले रौंदवा नहीं डाला।

बादशाह—नहीं मैंने बा-इज़्ज़त किले में वापस पहुँचा दिया। मैं औरतों से लड़ने यहाँ नहीं आया हूँ, मौलाना साहब।

बीरबल—हुज़ूर ने बड़ी ही अज़ीमुश्शान दिलेरी का सुबूत दिया।

बादशाह—ख़ैर, तो क़िला अब फ़तहसिंह के हाथ में है ?

बीरबल—जी हुजूर।

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—हुजूर, फ़ौजदार हाज़िर हैं।

(फ़ौज़दार का प्रवेश)

बादशाह—ख़ाँ साहेब, इतना परेशान क्यों हो ? फ़तह तो तुम्हें मिल ही गई।

फ़ौजदार—(ज़मीन चूमकर) आला हज़रत, जो आज देखा, कभी न देखा था। ओफ़ ग़ज़ब! फ़तह ने ही फ़तह को तहस-नहस कर दिया है। फ़तहसिंह पर बहादुरी खतम है।

बादशाह—(गंभीरता से) मुफ़स्सिल बयान करो।

फ़ौजदार—जहाँपनाह, राजा के मरने पर, जैसा कि खयाल था, हमारे खिलाफ़ खौफ़नाक जोश क़िले में फैला। जो दीवारें सुरंग से उड़ाई गई थीं, रातों-रात तैयार हो गईं। फ़तहसिंह, जिसके हाथ में किले की कमान है, १७ साल का लड़का है। खुदा-खुदा करके दम्मामा तैयार किया और उसमें बारूद भी बिछा दी गई, मगर एक फ़ाश गलती भी हो गई। तजवीज़ यह थी कि दोनों सुरंगें एक-साथ उड़ा दी जायँ और दस हज़ार फ़ौज लैस खड़ी रहे; सुरंग उड़ते ही क़िले में घुस कर दखल कर लें। मगर न-मालूम किस की गलती से सुरंग उड़ाने में ३ मिनट का फ़र्क़ पड़ गया। पहली सुरंग ज्योंही उड़ाई गई, फ़ौज

बढ़ी। वह दीवार के पास पहुँची ही थी तभी उनके नीचे की धरती उड़ गई, गरीब सिपाहियों की धज्जियाँ उड़ गईं !

बादशाह—(गुस्से से होठ चबाकर) फिर, फिर ?

फ़ौज़दार—(घुटनों के बल बैठकर) बन्दानेवाज़, इस के बाद दूसरा दस्ता दोनों तरफ से छूटा। मरम्मत दीवार नामुकम्मिल थी। उस पर से गर्म तेल के कड़ाह उलटे जा रहे। अगरचे यह मार गोलियों और तीरों से कम खौफ़नाक न थी, मगर सिपाही बढ़े जा रहे थे। ख़याल था कि किले में पहुँचते ही दुश्मन पामाल हो जायँगे। मगर देखा, वहाँ छातिओं के तेहरी दीवार खड़ी है।

सब लोग—(आश्चर्य से एक साथ) छातियों की दीवार ?

फ़ौजदार—जी हाँ, छातियों की दीवार ! लोहे और पत्थर से वह कहीं ज्यादा मज़बूत थी। इसमें न सुरंग ने काम दिया, न गोली ने। और तीर-वर्षा सब बेकार थे। दीवार न टूटी !

बादशाह—(जोश में) न टूटी ? किसी तरह नहीं टूटी ? फिर ?

फ़ौजदार—फिर खुदावन्द, पहले १५० मस्त हाथी छोड़े गए उसके बाद २०० और छोड़े गए। मगर वे मुट्ठी-भर काफिर। इन काली बालाओं से भी इन्सान ही की तरह लड़ने लगे। सैकड़ों मस्त हाथी बेसूँड के तड़फते फिर रहे हैं। लोहू का दरिया क़िले में बह रहा है, सैकड़ों दोस्त-

दुश्मन कुचले गए हैं। जो कुछ हो रहा है, सब अजीब है।

(बादशाह भौंचक-सा देखता रह जाता है)

फ़ौजदार—(झुककर अदब से) और हज़रत, वह फ़तहसिंह। वाह क्या कहना है! वह तलवार लिए खड़ा था। एक मस्त हाथी उसकी ओर बढ़ा। उसने उसकी सूँड पर वार किया। पर हाथी ने झपट कर उसे सूँड में लपेट लिया। उसने ललकार कर एक सिपाही को उसकी सूँड काटने का हुक्म दिया। उसने वह हाथ मारा कि सूँड कटकर गिर पड़ी, और हाथी चिंघाड़ता हुआ भाग गया।

अब्दुलक़ादिर—तोबा-तोबा!

फ़ौजदार—उसके बाद एक और हाथी ने उसे धर दबाया। आख़िर एक हाथी के दाँत से टकरा कर उसकी तलवार टूट गई और उसी ने उसे कुचलकर बेदम कर दिया।

(बाहर शोर-गुल, 'रानी गिरफ्तार, रानी गिरफ्तार')

(बादशाह खड़ा होकर देखता है, कुछ सिपाही पास आकर)

सिपाही—(ज़मीन तक झुककर) हुज़ूर की फ़तह। चित्तौड़ की रानी गिरफ्तार हुई।

बादशाह—(बीरबल से) राजा साहब, महारानी को बाइज़्ज़त डेरे में ठहरावें। पहरे का खासा इन्तज़ाम रहे।

बीरबल—जो हुक्म।

(प्रस्थान)

बादशाह—(सिपहसालार से) रानी कहाँ गिरफ्तार हुई ?

सिपाही—हुजूर वे घोड़े पर चढ़कर पीले कपड़े पहने फाटक खोल किले से निकल पड़ीं। उनके बाल खुले हुए थे। दोनों हाथों में नंगी तलवारें थीं, चेहरे की तरफ़ देखा नहीं जाता था। बहुत थोड़ी फ़ौज साथ थी। सब पीले लिबास में थे। मगर पल-भर में इस लिबास पर सुर्ख़ी चढ़ गई। रानी और उसकी वह छोटी-सी फ़ौज गोली की तरह हज़ारों फ़ौज को चीरती हुई शाही ख़ीमे तक चली आई। हम लोग किसी तरह नहीं रोक सके। रास्ते-भर में लाशों का ढेर लग गया। बिमुश्किल तमाम कब्ज़े में किया है।

बादशाह—हूँ! अच्छा जाओ।

(सिपाही का प्रस्थान)

बादशाह—(स्वगत) या खुदा, मुसलमानों को ऐसा एक भी हीरा नहीं अता किया ? वाहरी जवाँमर्दी !

अब्दुलक़ादिर—जहाँपनाह की फ़तह हुई। अब हुजूर किस जवाँ-मर्दी की तारीफ़ कर रहे हैं।

बादशाह—जवाँमर्दी कुछ और चीज़ है, और फ़तह कुछ और चीज़।

अब्दुलक़ादिर—खुदावन्द ठीक फ़र्माते हैं, मगर फ़तह ही...

बादशाह—बहस मत करो। अब्दुलक़ादिर साहिब, यह सवाल कुरान का नहीं है।

अब्दुल०—(नाराज़ी से) क्या जहाँपनाह कुरान मजीद की तौहीन......

बादशाह—(हँसकर, बीच में) नहीं-नहीं, जाओ।

(प्रस्थान)

——

दूसरा दृश्य

कैदख़ाना (शाही)

समय—संध्या

(रानी अकेली टहल रही है)

रानी—(स्वगत) यह भी हुआ! पर कैसे कुसमय। स्वामी भी नहीं हैं, फ़तहसिंह भी नहीं है। क़िला भी नहीं है, कोई नहीं है। मैं थी सो यहाँ हूँ। (छाती पर हाथ मारकर) आह! चित्तौड़ की रक्षा का कोई उपाय नहीं। (पैर पटक कर) नगर में क़तलेआम हो रहा है—बालक बूढ़े-बच्चे सब तलवार के घाट उतारे जा रहे हैं। दुर्ग में मस्त हाथी रौंद रहे हैं। उफ़! मैं यहाँ कहाँ फुर्सत में बैठी हूँ? (उत्तेजित होकर उठ खड़ी होती है) कहाँ है तलवार? कहाँ है घोड़ा? जसवन्त! जसवन्त! (सिर पकड़कर) आह! मैं कैद में हूँ। समझी। (कुछ रुककर) छिः! (पैर पटककर) कैद? इस समय? नहीं, कदापि

नहीं मुझे फ़ुर्सत नहीं है। (पुकारकर) कौन है ? पहरे पर कौन है ?

(जमादार का प्रवेश)

जमादार—आप क्या चाहती हैं ?

रानी—तुम्हारा अफ़सर कौन है ?

जमादार—सलावतखाँ सूबेदार।

रानी—उन्हें बुलाओ।

जमादार—अभी ?

रानी—अभी।

जमादार—क्या काम है ?

रानी—(क्रोध से पैर पटककर) अभी बुलाओ, अभी !

(सिपाही रानी की सूरत देख कर डरता हुआ भागता है)

(सलावत का प्रवेश)

सलावत—महारानी क्या चाहती हैं ?

रानी—क्या तुमने मुझे यहाँ रख छोड़ा है ?

सलावत—नहीं। बादशाह सलामत ने। मैं पहरे पर हूँ।

रानी—मुझे फ़ौरन बादशाह के सामने ले चलो।

सलावत—बादशाह का हुक्म नहीं है।

रानी—(दर्प से) मेरा हुक्म है।

सलावत—(नर्मी से) माफ़ फ़र्माएँ। आप का हुक्म मैं नहीं मान सकता। आप क़ैदी हैं और मैं शाही बन्दा हूँ।

रानी—(गुस्से से होंठ चबाकर) बादशाह का हुक्म ले आओ।

मैं एक पल-भर भी यहाँ नहीं ठहर सकती, मुझे इतनी फ़ुर्सत नहीं है।

(चलने को उद्यत होती है)

सलावत—(घबराकर) दो मिनट आप ठहरें, मैं अभी बादशाह सलामत से अर्ज़ करता हूँ।

(प्रस्थान)

रानी—(स्वगत) अधिकार ही शक्ति है। वही हुक्म है। मेरा हुक्म कुछ नहीं ? ख़ैर, पर ये मुझे रानी क्यों कहते हैं ? क्या उपहास करते हैं ? चित्तौड़ के राठौर-अधिनायक की स्त्री का उपहास ? (होठ चबाकर) हूँ !

(सलावत का प्रवेश)

सलावत—बादशाह सलामत खुद तशरीफ़ ला रहे हैं।

(उमराओं के साथ बादशाह का प्रवेश)

(रानी और बादशाह क्षण-भर विचित्र दृष्टि से एक दूसरे को देखते हैं)

बादशाह—महारानी !

रानी—(बात काटकर) मुझे कैदी कहिए। मैं महारानीं नहीं हूँ। महारानी का हुक्म होता है, अधिकार होता है. सुहाग होता है, मेरा कुछ नहीं है। मैं आपकी कैदी हूँ।

बादशाह—महारानी, लड़ाई के असूल सख्त होते हैं। मुझे इस बेअदबी के लिये माफ़ फ़र्मावें। कहिए, मुझ से आपको क्या कहना है ?

रानी मुझे आपने क्यों क़ैद कर रक्खा है ? मुझे फ़ौरन सज़ा दीजिए, मैं क़ैद रहना नहीं चाहती । मुझे इतनी फ़ुर्सत नहीं है । जल्लादों को बुलाइए ।

बादशाह—ना रानी ! खुदा अकबर को ऐसी अक्ल न दे कि उसे तुम-जैसी पाकीज़ा बहादुर औरत के साथ ज़ुल्म करना पड़े ।

रानी - (घृणा से हँसकर) तो अभी ईश्वर है ! और अकबर उसे जानता है ? मगर चित्तौड़ में और क़िले में जो कुछ हो रहा है, वह आप ही का काम है न ?

अकबर—मुझे अफ़सोस है । मगर जंग तो जंग ही है ।

रानी—जंग ! जंग क्यों है ? दिल्ली के बादशाह को यदि चित्तौड़ के राजपूतों ने बेटी नहीं दी, तो इतना पाप किया था ? दूसरों की स्वाधीनता का इकट्ठा रस निचौड़कर पीने में बादशाही गौरव क्या बढ़ जाता है ?

बादशाह—(झेंपकर) सही है । मगर खुदा ने हिंद की शहंशाही मुझे अता की है । यह कब मुमकिन है कि मैं उसमें इस क़िस्म के सूराख देखूँ ।

रानी—(तीव्रता से घृणा के स्वर में) ठीक है । मेवाड़ की उजाड़ शहंशाही आपको मुबारक हो ! कल गीदड़, चील, गिद्ध क़िले और शहर में घुसेंगे, लूटेंगे, मनमानी शहंशाही करेंगे । आप भी उन्हीं के साथ घुसिए । भयँकर खँडहर, सड़ी लाशों और धधकती चिताओ पर शहंशाही का ताज पहि-

निए। अपने ताज के सितारों पर यह एक फ़तह का चमकदार सितारा और लटका लीजिए। पर मेरा फैसला कर दीजिए। अभी जल्लाद बुलवाइए। मुझे यहाँ ठहरने की रत्ती-भर भी फुर्सत नहीं है।

बादशाह—(लज्जित और अनुतप्त होकर) मैं तुम्हें छोड़ता हूँ। तुम खुशी से किले में चली जाओ।

रानी—मगर मैं तुम्हारे खून की प्यासी हूँ।

बादशाह—कोई अजब नहीं। मैं तुम्हारे खाविंद का खूनी हूँ। (बीरबल से) राजा साहब, महारानी की सवारी इज्ज़त के साथ क़िले के फाटक तक पहुँचा दी जाय। और आज लड़ाई बन्द कर दी जाय, ताकि क़िलेवालों को कल के लिये तैयारी करने का मौक़ा मिले।

(प्रस्थान)

(बीरबल के साथ रानी का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान-राजमहल

(समय—प्रभात)

(रानी धरती में औंधे मुँह पड़ी है, नेपथ्य में गान)

गायन—प्रातःश्री

जय जय जग-आश-रूप ऊपे सुखदाई,
जागृति-मय पुण्य-प्रभा पूरब प्रकटाई।

शीतल सुरभित समीर।
सरल सुखद धीर धीर।
वहत परस सरस नीर।
प्राणन हर्षाई। जय०
नवद्रुम पल्लव डुलाय।
सुमन सुमन रज बिछाय।
प्रकृति प्रकृति-रँग रचाय।
शोभा दर्शाई। जय०

रानी—(बैठकर) गया। सब गया। राज-पाट, जीवन, सुख, सुहाग सब गया। कल मैं रानी थी, देश की माता थी। आज असहाय अबला हूँ। (आकाश की ओर देखकर) स्वामिन्, मेरे दर्प को क्षमा करना। चित्तौड़ को न बचा सकी। चित्तौड़ के श्मशान में महाचिता जलने की घड़ी आ गई। चिता धाँय-धाँय जलेगी और उसकी राख मुँह पर लपेटकर मुगल-साम्राज्य सुशोभित होगा! (उठकर) कैसा सुन्दर दिन है, धूप कैसी चमक रही है। ये अरावली की हरी-भरी पहाड़ियां कैसी सुहावनी दीख रही हैं। अहा-हा! कैसी शीतल वायु चल रही है। आज यह सब समाप्त!

(नैपथ्य में गान)

अंध निशा विगत गई।
शुभ्र दिशा प्रकट भई।

आश के सुवर्ण तार।
शुभ्र ज्योति लाई। जय०
सहृदय संताप पेखि।
ओस अश्रु सजल नेत्र।
दया द्रवित अति पुनीत।
प्रात-मात आई। जय०

बच्ची गा रही है। भोली गुलाब के फूल के समान बच्ची, कमलिनी के समान कोमल बच्ची, बेचारी बिना बाप की बच्ची; मेरी बेटी, मेरी बिटिया। (पुकारकर) बेटी, कमला!

कमला—(दौड़कर) माता!

रानी—क्या गा रही है बेटी ?

कमला—वही प्रात:श्री का गीत ।

रानी—(आंसू रोककर) मेरी अच्छी बिटिया, मेरे लाल ! गीत समाप्त करो। चलो पिता बुला रहे हैं। वहां चलें ! (आकाश की ओर उँगली उठाती है)

(लड़की भीत दृष्टि से ऊपर देखती है)

लड़की—(कंपित स्वर में) माँ !

(नेपथ्य में)

"तैयार रहो, तैयार रहो।"

अखिला—(प्रवेश करके तैयार ! तैयार किस लिये ?

रानी—वह देखो पंवरसिंह आ रहे हैं।

(पसीने से तर खून से लतपत पेरवसिंह का प्रवेश)

पेरव०—महारानी सब लोग तैयार हो जाओ ?

अखिला०—किस लिये ? किस लिये ?

पेरव०—अपनी रक्षा के लिये।

रानी—हम तैयार हैं। क्या खबर है पेरव ? इतना अधैर्य !

(ज़ोर से अर्राटे का शब्द) ओफ ! दुर्ग टूटा। शत्रु क़िले में घुस आए हैं। दोनों पार्श्व का कोट भग्न होगया। सभी वीर जूझ गए। ५०० वीर बचे हैं, वे झुरमुट बाँध कर माता के मंदिर को घेर कर नंगी तलवार लिए खड़े हैं। शहर में क़त्ले-आम हो रहा है। नगर की स्त्रियाँ खिड़कियों से गर्म तेल उलीच रही है। बालक छतों पर से ईंट-पत्थर बरसा रहे हैं। बनियों ने तराजू-बांट से प्रहार किया है। गलियों में रक्त की धार बह रही है। कटे हुए सिर, तड़पते हुए धड़ जगह-जगह धूल में लोट रहे हैं। शत्रु प्रत्येक घर में घुसते, लूटते और आग लगाते हैं। नगर धाँय-धाँय जल रहा है। (कोलाहल) शत्रु शायद इधर ही आ रहे हैं। महारानी की आज्ञा !......

रानी—तब ?

पेरव०—जो महारानी की आज्ञा।

रानी—(छाती ऊँची करके) कुछ परवाह नहीं। सीसोदिया-वंश का रक्त-बिन्दु अंत तक ठंडा न होने पावे। खबरदार ! जब तक जौहर-व्रत पूर्ण न हो, बचे हुए वीरों में से न कोई

मरे, न कोई गिरे, न कोई हटे ! जाओ । (घूम कर) अखिला ! बेटी !

अखिला—माँ !

रानी—बेटी ! कठिन कर्तव्य का समय आ गया। क्या सब तैयार हैं ?

अखिला—सब तैयार हैं; मैं तैयार हूँ । १४ हज़ार राजपूत-वीरांगनाएँ तैयार हैं।

रानी—तब विलंब क्यों ? चिता में अग्नि दो !

(अखिला का प्रस्थान)

रानी—(घूमकर पेरव से) एं ! अभी तक खड़े हो ?

पेरव०—महारानी ! शत्रु अत्यन्त प्रतिष्ठा-पूर्वक संधि करने को प्रस्तुत हैं।

रानी—(क्षण भर स्तब्ध रहकर) क्या कहा ?

पेरव०—(भयभीत स्वर से) समय के लिये बच रहना राजनीति है।

रानी—(घृणा से) हूँ , तुम मेरे जामाता होने वाले थे। अच्छा हुआ, तुम्हारे विचार प्रथम ही मालूम होगए। (पुकार कर) क़िले में कोई वीर सीसोदिया है ?

पेरव०—महारानी। माता ! क्षमा, पेरव कायर नहीं है ! मेवाड़ की माता ! आपकी जय हो, आज्ञा हो माँ । क्षमा—क्षमा। (घुटनों के बल बैठता है)।

रानी–(पूरी ऊँचाई में तनकर) मर मिटो, पर अपमानजनक

शब्द मुख पर मत लाओ। मेरी आज्ञा है, जब तक व्रत पूर्ण न हो, कोई न मरे, न गिरे, न पीछे हटे। जाओ अब उस लोक में हम मिलेंगे।

(पेरव का उन्मत्त भाव से तलवार घुमाते हुए प्रस्थान)

रानी—कमला ! बेटी !

कमला—(थर-थर काँपती हुई) माँ ! माँ ! मुझे बड़ा भय लग रहा है। आग ! ना, ना, माँ ! उस दिन मेरी गुड़िया जल गई थी, (धरती पर गिरकर) माँ ! माँ ! बचाओ !

रानी—(कड़े स्वर में, कलाई पकड़कर) लड़की ! अपने स्वर्ग-वासी पिता को लज्जित न कर, मेरी कोख और दूध को न लजा, खड़ी हो।

" महारानी की जय हो। " (बहुत सी स्त्रियों का प्रवेश)

रानी—हमारी जय मृत्यु है। हम मृत्यु के व्यवसायी हैं। चलो स्वर्णदेश में, चढ़ो स्वर्ण-सीढ़ी पर। देखो, आकाश में महाराज हमें देख रहे हैं। अहाहा ! कैसा तेज है; वही तेज हम में रमे, उसी तेज में हम लीन हों। आओ, बहनो ! क्षत्राणियो ! आज हम ऐसी आग सुलगावें, जिस में दिल्ली का तख्त भस्म हो जाय, सात समुद्रों का पानी भी उसे न बुझा सके। बेटी !

अखिला—माता !

रानी—तो फिर चलो मरने।

अखिल—चलो। (प्रस्थान)

(चिता जलती है, स्त्रियाँ जल रही हैं । नेपथ्य में धीमे स्वर में गान)

गायन—सोहनी

वीर क्षत्राणी सुमाता स्वर्ग-सीढ़ी चढ़ रहीं ।
देख लो उत्सर्ग अब ये दिव्य देवी बन रहीं ।
याँ बुला लाओ उन्हें, उत्सर्ग यह वे देख लें;
आग की लपटें लिपटकर प्यार कैसा कर रहीं ।
राजपूताना सदा से वीरता में था अनूप;
आज से बस त्याग में भी ख्याति वोही मिल गई ।
जीवनी क्षत्राणियों की थी अलौकिक सर्वथा;
मृत्यु यह उससे अधिक बढ़कर अलौकिक बन गई ।
तेज के अवतार बन भूलोक आलोकित किया;
तेज की ये मूर्तियाँ थीं, तेज ही में मिल गई ।

(अकबर का दरबारियों सहित घबराए हुए प्रवेश, और चकित खड़े रहना)

[पटाक्षेप]

———

राज्यश्री

(लेखक—बाबू जयशङ्कर प्रसाद)

पात्र

हर्षवर्धन—	स्थाण्वीश्वर का राजकुमार, फिर भारत का सम्राट्
दिवाकरमित्र—	एक महात्मा
नरेन्द्रगुप्त—	गौड़ का राजा
राज्यवर्धन—	स्थाण्वीश्वर का बड़ा राजकुमार
भण्डि—	सेनापति
नरदत्त—	मालव का सैनिक
सुएनच्वांग—	चीनी यात्री
पुलकेशिन—	चालुक्य नरेश
धर्मसिद्धि, शीलसिद्धि—	दो भिक्षु
शान्तिदेव—	भिक्षु, फिर दस्यु
देवगुप्त—	मालवराज
मधुकर—	उसका सहचर
ग्रहवर्म्मा—	कन्नौज का राजा
राज्यश्री—	कन्नौजराज ग्रहवर्म्मा की रानी
अमला, कमला, विमला—	राज्यश्री की सखियाँ
सुरमा—	एक मालिन

दौवारिक, सहचर, प्रहरी दस्यु, सैनिक, प्रतिहारी, दूत, मंत्री,
नागरिक—इत्यादि

——

पहला अंक

पहला दृश्य

नदी तट का उपवन

शांतिदेव—सुरमा, अभी विलम्ब है।

सुरमा—क्या विलम्ब है देव, देखो मैं मल्लिका का ज्ञुप सींचती हूँ; यह भी मुझे वंचित नहीं रखता—छाया, सुगन्ध और फूलों से जीविका देता है, किन्तु तुम कितने निष्ठुर हो! तुम्हारी आँखों में दया का संकेत भी नहीं!

शांति०—मैं भिक्षुक हूँ सुरमा! संसार ने मुझे एक ओर ढकेल दिया है—मैं अभी उसी ढालुवे से ढलक रहा हूँ। रुकने का, सोचने का अवसर नहीं। मुझे तुम्हारी बात, तुम्हारा आकर्षण एक विडम्बना—एक धोखा-सा जान पड़ता है।

सुरमा—तुम निर्दय हो, मेरी आराधना का मूल्य नहीं जानते—भिक्षु! तुम्हारा धर्म उसके सामने—

शांति०—उतावली न हो सुरमा! परीक्षा देने जा रहा हूँ; साथ ही भाग्य की परीक्षा भी लूंगा। महारानी राज्यश्री एक दिन भिक्षुओं को दान देंगी, मैं भी देखूँगा कि भाग्य मुझे किस ओर खींचता है। फिर मैं तुमसे मिलूंगी।

प्रस्थान

(देवगुप्त का प्रवेश)

देव०—वाह ! जैसा सुन्दर यह उपवन है वैसी ही यह मालिन भी है। क्यों जी, तुम्हारा नाम सुनूँ तो।

सुरमा—(सलज्ज)—मुझे लोग सुरमा कहते हैं।

देव०—नाम तो बड़ा सुरुचिपूर्ण है ! भला, मैं तुम्हारे इस उपवन में कुछ दिन ठहर सकता हूँ ?

(सुरमा देवगुप्त को देखती है, देवगुप्त हंसता है)।

सुरमा–(स्वगत)–यह कैसा विलक्षण पुरुष है ! उत्तर देते भी नहीं बनता, क्या करूँ ?

देव०—तो मैं तुम्हारे इस उद्यान में दो घड़ी तो विश्राम अवश्य करूँगा। फिर चाहे निकाल देना।

सुरमा—अच्छी बात है। मैं अपनी पुष्प-रचना लेकर राज-मन्दिर जाती हूँ, तब तक आप यहाँ विश्राम कर लीजिये।

देव०—तो क्या तुम राज-मन्दिर में भी जाती हो ?

सुरमा—हाँ ! वहीं से तो मेरी जीविका है !

देव०—अच्छी बात है सुरमा, तुम हो आओ; मैं तब तक थकन मिटाता हूँ।

(एक वृक्ष के नीचे बैठ जाता है। सुरमा माला बनाती हुई उसे कनखियों से देखती जाती है)

देव०—वाह ! कितना सुरभित समीर है। घ्राण तृप्त हो गया; मस्तिष्क जैसे हँसने लगा और ग्लानि का तो कहीं पता नहीं। सुरमा, तुम्हारा स्थान कितना सुरम्य है !

दूसरा दृश्य

सुरमा का उपवन

देवगुप्त—मालव-नरेश, मैं छद्मवेश में अनेक देश देखता फिरा, किन्तु उस दिन मदनोत्सव में जो आनन्ददायक दृश्य यहाँ देखने में आया, वह क्या कभी भूलने को है ! राज्यश्री ! आह कितना आकर्षक—कितना सौन्दर्यमय वह रूप है !

मधुकर का प्रवेश

मधु०—महाराज, मालव से एक दूत आया है।

देव०—उसे बुला लो मधुकर, मैं अब कुछ दिनों यहीं अपना निवास रक्खूँगा।

मधुकर जाता है, दूत के साथ फिर आता है

दूत—जय हो देव !

देव०—कहो क्या समाचार है ?

दूत—महाराज के अनुग्रह से सब मंगल है। मंत्रीवर ने यह प्रार्थना पत्र श्रीचरणों में भेजा है।

पत्र देता है

देव०—(पढ़ता है)—'स्वस्ति श्री इत्यादि महाराज की...आज्ञा के अनुसार वीरसेन सेना के साथ निर्दिष्ट स्थान पर प्रेशित हो चुके हैं। और भी एक सहस्र सैनिक दूत के साथ ही अनेक वेषों में आपके समीप उपस्थित हैं। संकेत पाते ही एकत्र हो सकेंगे। किन्तु देव, परिणामदर्शी होकर कार्य्य

आरम्भ करें—

यही प्रार्थना है।'—(हँसकर पत्र फाड़ता हुआ)—मन्त्री वृद्ध हो गये हैं! जाओ विश्राम करो।

दूत जाता है

सुरमा का प्रवेश

देव०–आओ सुरमा, यह मेरा साथी एक और श्रेष्ठि आ गया है, तुम्हें कष्ट तो न होगा?

सुरमा–(माला एक ओर रखती हुई)—कष्ट! ओह! कष्टों का तो अभ्यास हो गया है। अभी राजमन्दिर से हो आई। सुना है कि महाराज मृगया के लिये सीमाप्रांत चले गये हैं। मैं उन विभव-विलास के प्रदर्शनों को, उपकरणों को, अपनी दरिद्रता की हँसी उड़ाते देखती हुई, लौट आई हूँ। यह माला, यह मल्लिका का बाल-व्यजन क्या होगा—मेरा दिन भर का परिश्रम!

देव०–(सहानुभूति से)–तो मैं इसे ले सकता हूँ सुरमा!

सुरमा–आप? ले लीजिये!

देव०–तुम्हारे महाराज कुपित तो न होंगे?

सुरमा–होना है, सो हो जाय श्रेष्ठि, मैं राजा को देखकर बड़ा डरती हूँ! वहाँ जाना होता है तो मैं जैसे आग में, पानी में जारही हूँ। पैर काँपने लगते हैं–मानो भूकम्प में चलरही हूँ।

देव०–और यदि मैं भी कहीं का राजा होऊँ सुरमा!

सुरमा–(देखकर) तुम ! तुम राजा नहीं हो सकते, असम्भव तुम तो हमारे-जैसे ही लोग हो, तुम्हारी मुख की ज्योति उहूँ; तुम और चाहे कुछ बन जाओ, राजा नहीं हो सकते।

देव०–वाह सुरमा ! तुम सामुद्रिक भी जानती हो !

सुरमा–(पास बैठकर)—अहा ! कितनी सुहावनी रात है—चन्द्रिका के मुख पर कुहरे का अवगुण्ठन नहीं ! स्वच्छ अनन्त में देवताओं के दीप झलमला रहे हैं—कितना सुन्दर दृश्य है !

देव०–(स्वगत) – कितनी भावनामयी यह युवती है—अवश्य इसके हृदय में महत्त्व की आकांक्षा है।—(प्रकट) क्यों सुरमा, ऐसी रात तो सुन्दर संगीत खोजती है—तुम कुछ गाना भी जानती हो ?

सुरमा–(कृत्रिम क्रोध से)–वाह ! आप तो धीरे-धीरे हाथ-पाँव फैलाने लगे !

देव०–(अनुनय से) एक तान ! अपराध क्षमा हो ! विदेश की यह रजनी आजीवन स्मरण रहेगी–दुहाई है !

सुरमा–मैं जानती हूँ कि नहीं, यह नहीं जानती; पर गाती हूँ–कभी-कभी अपने दुखी दिनों पर रोती हूँ अवश्य !

देव०–वही सही सुरमा !

सुरमा–(गाती है)–

आशा विकल हुई है मेरी,
प्यास बुझी न कभी मन की रे!

दूर हट रहा सरवर शीतल,
हुआ चाहता अब तो ओझल,
झुक जाती हैं पलकें दुर्बल,
ध्वनि सुन न पड़ी नव घनकी रे!

ओ बेपीर पीर! हूँ हारी,
जाने दे, हूँ मैं अधमारी,
सिसक रही घायल दुखियारी-
गाँठ भूल जीवन-धन की रे!

आशा०

तीसरा दृश्य

प्रकोष्ठ में मन्त्री

दूत-(प्रवेश करके)-आर्य्य! भयानक समाचार है!

मंत्री-क्या है?

दूत-सीमाप्रांत के कानन में महाराज तो सुख से मृगया-विनोद में दिवस-यापन कर रहे हैं, किन्तु........

मंत्री-कहो-कहो, किन्तु क्या?

दूत-युद्ध की आशंका है! मालवेश्वर की सीमा हमारी सीमा से मिली हुई है। अकारण उनकी सेना आजकल सीमा पर एकत्र होने लगी है और महाराज को चिढ़ाने के लिये

जान-बूझ कर कुछ धृष्टता की जा रही है। इसलिये महाराज ने कहा है कि सेनापति को सेना के साथ शीघ्र यहाँ आ जाना चाहिये।

मंत्री—किन्तु जैसे समाचार नगर के मुझे मिले हैं उससे तो मैं स्वयं सशंक हो रहा हूँ। मुझे कान्यकुब्ज के भीतर नागरिकों में कुछ सन्देहजनक व्यक्ति होने का पता चला है।—(कुछ सोचकर)—अच्छा, तुम महाराज से कहना कि मैं सैन्य भेजता हूँ, पर आद्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है। मैं नगर-रक्षा के लिये थोड़ी सेना रख लूँगा, क्योंकि स्थाण्वीश्वर से सहायता मिलने में अभी विलम्ब होगा। मैं वहाँ भी संदेश भेजता हूँ।

दूत का प्रस्थान

तो अब महारानी को भी समाचार देना चाहिये। अब स्मरण आया—आज तो वह दान-पर्व में लगी होंगी। तो चलूँ वहीं। सेना भी तो भेजनी है।

तो पहले सेनापति से मिलूँ या महारानी से? (सोचकर) पहले सेनापति से, यही ठीक होगा।

प्रस्थान

चौथा दृश्य

देव-मन्दिर में राज्यश्री

दान के उपकरण और भिक्षु उपस्थित हैं

राज्य०—(भिक्षुओं को वस्त्र और धन देती है) (शांतिदेव सामने

आता है) तुम्हारा शुभ-नाम भिक्षु ?

शांतिदेव—जय हो ! मेरा नाम शांतिभिक्षु...

रुक कर राज्यश्री की ओर देखने लगता है

राज्यश्री—भिक्षु, तुमने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है, किन्तु तुम्हारा हृदय अभी······

शांति०—कल्याणी ! मैं, मेरा अपराध—

राज्य०—हाँ तुम ! भिक्षु ! तुम्हें शील-सम्पदा नहीं मिली, जो सर्व प्रथम मिलनी चाहिये।

शांति०—मैं सब ओर से दरिद्र हूँ देवि !–(स्वगत)—विश्व में इतनी विभूत ? और मैं—सिर ऊँचा करके अत्यंत ऊँचाई की ओर देखता हुआ केवल उलटा होकर गिर जाता हूँ—चढ़ने की कौन कहे !

राज्य० - क्या सोचते हो, भिक्षु !

शाँन्ति०—केवल अपनी क्षुद्रता

राज्य०—तुम संयत करो मन को भिक्षु ! श्लाघा और आकांक्षा का पथ तुम बहुत पहले छोड़ चुके हो। यदि तुम्हारी कोई अत्यन्त आवश्यकता हो तो मैं पूरी कर सकती हूँ; निश्चिन्त उपासना की व्यवस्था करा दे सकती हूँ।

शांति०—(स्वगत) इतना सौन्दर्य, विभव, और शक्ति एकत्र !

राज्य०—तुम चुप क्यों हो, भिक्षु ?

शांति०—मुझे जो चाहिये वह नहीं मिल सकता है—इसलिये मैं न माँगूँगा।

राज्य०—भिक्षु ! मेरा व्रत न खण्डित करो।

शांति०—नहीं, मैं दान न लूँगा; मुझे कुछ न चाहिये।

प्रस्थान

राज्य०—विमला ! मैं इस प्रसंग से दुखी हो गई हूँ।

अमला—चिन्ता न कीजिये देवि, पूजन भी तो हो चुका है। अब पधारिये।

राज्य०—चलाती हूँ सखि ! मेरा हृदय कह रहा है कि महाराज का कोई संदेश आ ही रहा है।

विमला—प्रियजन की उत्कण्ठा में प्रायः ऐसा ही भ्रम हुआ करता है।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रति०—महादेवी की जय हो ! मंत्री महोदय आ रहे हैं।

राज्य०—आने दो।

मंत्री०—(प्रवेश करके)—महादेवी की जय हो ! कुछ निवेदन...

राज्य०—कहिये-कहिये—

मंत्री—सीमाप्रांत से युद्ध का संदेश आया है।

राज्य०—(स्वस्थ होकर)—मंत्री ! इसी बात को कहने में आप संकुचित होते थे ! क्षत्राणी के लिये इससे बढ़कर शुभ समाचार कौन होगा ! आप प्रबन्ध कीजिये, मैं निर्भय हूँ।

मंत्री का प्रस्थान

राज्य०—चलो, सब लोग फिर से विजय के लिये प्रार्थना कर लें।

सब प्रतिमा के सामने जाकर प्रार्थना करती है—पुष्पांजलि चढ़ाती हैं। मंदिर में अट्टहास; राज्यश्री मूर्छित होती हैं; अन्धकार।

पचवां दृश्य

सुरमा का उपवन

देव०—सुरमा! मैं श्रेष्ठ नहीं हूँ—आज मैं तुम्हें अभिन्न समझ कर अपना रहस्य कहता हूँ। मैं मालव-नरेश देवगुप्त हूँ।

सुरमा—(आश्चर्य से)—क्या?

दूत—(प्रवेश करके)—जय हो देव, स्थाण्वीश्वर में प्रभाकर वर्धन का निधन हुआ और राज्यवर्धन इस समय हूण-युद्ध के लिये पञ्चनद गये हैं।

देव०—अच्छा जाओ!

दूत का प्रस्थान

सुरमा०—तुम—आप—मालव के—

देव०—हाँ सुरमा, चलोगी मेरे साथ?

सुरमा—यह भी सत्य है? नहीं महाराज! जैसे आपका वेष कृत्रिम है, वैसे ही यह वाणी भी तो नहीं?

देव०—नहीं प्रिये, मैं तुम्हारा अनुचर हूँ।

सुरमा—हे भगवान! इतना बड़ा सौभाग्य? नहीं, यह मेरे

अदृष्ट का उपहास है।

देव—सुन्दरी ! यह उपहास नहीं, सत्य है।

सुरमा—परन्तु शाँतिभिक्षु की प्रतीक्षा !

देव०—कौन शाँतिभिक्षु; उसे कुछ दान दिया चाहती हो क्या ?

सुरमा—नहीं, दे चुकी हूँ।

देव०—तो दे दो; यह उपवन ही न—तुम्हें अब इसकी आवश्यकता ही क्या है ?

सुरमा—वही करूँगी।

देव०—मुझे तुमने प्राणदान दिया, परन्तु देखो, जब तक यहाँ से हम लोग मालव के लिये प्रस्थान न करें, यह बात खुलने न पावे।

सुरमा—अच्छा जाती हूँ, विश्वास रखिये—(अस्तव्यस्त भाव से उठ जाती है)

(मधुकर और चरका प्रवेश)

चर—जय हो देव ! सीमाप्राँत का युद्ध आपके पक्ष में सफल हुआ। ग्रहवर्म्मा को कड़ी चोट आई है। क्योंकि वीरसेन ने कान्यकुब्ज की सेना पहुँचने के पहिले ही युद्ध आरम्भ कर दिया था। इधर दुर्ग में भी सेना बहुत कम है।

देव०—मेरा अनुमान है कि मेरे सैनिक उनसे अधिक हैं। मधुकर ! सुनो तो—(कान में कुछ कहता है, प्रकट)—जब कुछ और सेना सीमा की ओर चली जाय, तो जिस ढँग से

बताया है, उसी प्रकार मेरे सब सैनिक दुर्ग में एकत्र हों। 'विजय' संकेत होगा, जाओ—बस—

सबका प्रस्थान

प्रकोष्ठ में मूर्च्छित राज्यश्री और सखियाँ

विमला सखी ! क्या होगा !

कमला—क्या कहूँ, मन्दिर वाली घटना में अभी तक एक बार भी पूरी चेतना नहीं हुई। सखी ! यह बात तो आश्चर्यजनक हुई—क्या कोई अपदेवता वहाँ उस दिन आ गया था ?

विमला—सखी, मैं तो समझती हूँ, वही भिक्षुक ठठा कर हँस पड़ा और महारानी को प्रतिमा हँसने के अपशकुन की आशंका हुई।

कमला—देख, देख, अब उठ रही हैं; कुछ कहा ही चाहती हैं—

(मन्त्री का प्रवेश, राजश्री उठकर प्रलाप करती है)

राज्य—हँस दिया - हाँ, हँस दिया ! मेरी प्रार्थना पर हँस दिया ! क्या वह अनुचित थी ? मेरी बात क्या हँसने योग्य थी ? नहीं, नहीं, हँसी का कारण है मेरा निर्बल होना। हँसो और भी हँसो ! मेरी प्रार्थना तुम्हारे कर्कश कठोर अट्टहास में विलीन हो जाय ! हा हा हा हा !

मन्त्री—किससे और क्या कहूँ ? जिसकी आशंका-मात्र से यह दशा है, उसे वास्तविक समाचार देने का क्या परिणाम होगा ? कुटिलते ! देख तूने एक सोने का सँसार मिट्टी में मिला दिया !

प्रतिहारी का त्रस्त भाव से प्रवेश

प्रति—आर्य्य ! न मालूम क्यों दुर्ग में बड़ी भीड़ इकट्ठी हो रही है। प्रजा कह रही है कि हमें महाराज की सच्ची अवस्था मालूम होनी चाहिये।

मन्त्री—उन लोगों से कहो कि हम अभी आते हैं।

प्रतिहारी का प्रस्थान

राज्यश्री उठकर उन्मत भाव से टहलती है

प्रति०—(पुनः प्रवेश करके)—अनर्थ !

मन्त्री—क्या हुआ कुछ कहो भी !

प्रति०—उन्हीं प्रजाओं के साथ दुर्ग में सहस्रों शत्रु घुस आये हैं !

मन्त्री—हूँ ! वह प्रजा न थी, जो इस तरह षड्यन्त्र करके दुर्ग में चली आई है ? वे शत्रु.........

विचारने लगता है

एक सैनिक का प्रवेश

सैनिक—मंत्रिवर ! दुर्ग-रक्षक सैन्य संग्रह करके आत्म रक्षा का प्रबन्ध कर रहे हैं। उन्होंने मुझे यह कहने के लिये भेजा है कि इस उपद्रव का नेता वही दुष्ट वणिक-वेषधारी मालवेश है।

मन्त्री—(चौंक कर)—क्या ! मालवेश ? अच्छा ! जाओ, युद्ध में पीछे न हटना ! कान्यकुब्ज के एक भी सैनिक के जीवित रहते देवगुप्त दुर्ग पर अधिकार न करने पावे।

सैनिक का प्रस्थान

राज्य०—मन्त्री ! उसने हँस दिया !

नेपथ्य में रण-कोलाहल

मन्त्री—विमला। यहाँ महारानी का रहना ठीक नहीं।

राज्य०—महारानी फिर कहाँ जायँगी ?

मन्त्री—शत्रु दुर्ग में घुस आये हैं

राज्य०—जाओ उन्हें सादर लिवा लाओ !

मन्त्री—हे भगवन् !

देवगुप्त का विजयी सैनिकों के साथ प्रवेश। राज्यश्री मन्त्री का खड्ग ले लेती है और देवगुप्त पर उसे चलाती है, देवगुप्त उसे पकड़ता है और वह मूर्च्छित होती है।

यवनिका पतन

———

दूसरा अंक

पहला दृश्य

सुरमा का उपवन, अकेले शांतिभिक्षु

शान्ति०—मैं संसार से अलग किया गया था, किस लिये? पिता ने मुझे भिक्षु-संघ में समर्पण किया था, क्या इस लिये कि मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करूँ? मेरे लिये उस हृदय में दया या सहानुभूति न थी! जब हृदय-कानन की आशा-लता बलवती हुई तो मैं देखता हूँ कि कर्म्मक्षेत्र में मेरे लिये कुछ अवशिष्ट नहीं। सुरमा! जीवन की पहली चिनगारी, वह भी किधर गई! धधक उठी एक ज्वाला, राज्यश्री!—(सोचकर)—मूर्ख मैं निश्चय नहीं कर पाता कि सुरमा या राज्यश्री—मेरे जलते हुए ग्रहपिण्ड के भ्रमण का कौन केन्द्र है! कान्यकुब्ज में इतना बड़ा परिवर्तन! इधर सुरमा भी न जाने कहाँ गई! तो मैं क्या करूँ? लौट जाऊँ संघ में? नहीं, संघ मेरे लिये नहीं है। अब यहीं कुटी में रहूँगा। तो क्या मैं तपस्वी होऊँगा? नहीं, अच्छा जो नियति करावे। (देखकर)–ओह कैसी काली रात है!

सोता है, डाकुओं का प्रवेश

एक–आज जो सेना हम लोगों ने देखी, वह किसकी है?

दूसरा—राज्यवर्धन की सेना है। राज्यश्री और ग्रहवर्म्मा का प्रतिशोध लेने आ रही है।

पहिला—तो क्या राज्यश्री भी मार डाली गई ?

दूसरा—नहीं जी, वह तो बंदी है। इसी गड़बड़ी में तो अपना हाथ लगेगा। क्या बताऊँ, यदि राज्यश्री को हम लोग पा जाते तो बहुत-सा धन मिलता।

शांतिभिक्षु करवटें बदलता है

पहिला—(उसे देखकर)—तू कौन है रे ?

शांति०—विकटघोष !

दूसरा—सो तो तेरे लम्बे-चौड़े हाथ-पैर और कर्कश कण्ठ से ही प्रकट है, पर तू करता क्या है ?

शांति०—मैं कान्यकुब्ज का दस्यु हूँ, मूर्ख मेरे क्षेत्र में तू क्यों आया ?

पहिला—भाई विकटघोष ! तो हम लोग भी तुम्हें अपना नेता मानेंगे।

विकट०—यह बात। तो फिर राज्यश्री को अकेले लोप करने का प्रयत्न न करना ! समझा !

दोनों—नहीं, भला ऐसा भी हो सकता है। परन्तु दस्युपति, एक और भी सेना गौड़ को आ रही है। इन दोनों के आक्रमण के बीच से रज्यश्री का निकाल ले जाना सहज काम नहीं।

विकट०—डरपोक ! इसी बल पर दस्यु बना है !

दोनों—नहीं, हम लोग प्राण देने या लेने में पीछे नहीं हटते।

विकट०—तो अच्छी बात है। चलो हम लोग आज रात में दोनों सेनाओं का लक्ष्य तो समझ लें।

दोनों—चलो।

तीनों का प्रस्थान

दूसरा दृश्य

शिविर

राज्यवर्धन, नरेन्द्रगुप्त, भण्डि

नरेन्द्र०—दुरात्मा देवगुप्त ने कैसे कुसमय में यह उत्पात मचाया! जब आप दोनों भाई पिता के शोक में व्याकुल थे, तभी उसे नारकीय अभिनय करने का अवसर मिला! अच्छा, धैर्य और शांति से अग्रसर होकर...........

राज्य०—राज्यवर्धन वह राख की ढेर नहीं, जो शत्रु-सुख के पवन से धधक न उठे। यह ज्वाला है; उत्तरापथ को जला-कर शांत होगी। गौडेश्वर, तुम तो वर्धनों के बंधु हो, परन्तु यह तुमसे न छिपा होगा कि स्थाण्वीश्वर की उन्नति अनेक नरेशों की आँखों में खटक रही है। अभी पंचनद से हूणों को विताड़ित किया और जालंधर में उदितराज को स्कन्धावार में छोड़ आया। परन्तु मैं देखता हूँ कि हूणों से पहले अपने घर में ही युद्ध करना पड़ेगा।

भण्डि–देव, उसके लिये चिन्ता क्या। हमारा शस्त्र-बल उचित दण्ड देने में कभी पीछे न रहेगा। महोदय और मगध तो हम लोगों के मित्र ही हैं। पश्चिम आर्य्यावर्त में ही तो संघर्ष है।

नरेन्द्र०–कुछ चिन्ता न कीजिये। गौड़ और मगध की समस्त शक्ति आपके लिये प्रस्तुत है।

राज्य०–भण्डि, महोदय-दुर्ग लेने का क्या उपाय निश्चित किया है? ध्वंस करने की तो मेरी इच्छा नहीं; और अवरोध में भी अधिक दिन बिताना ठीक नहीं।

भण्डि–उसके लिये चिन्ता न कीजिये देव, सब यथासमय आप देखेंगे। विश्राम कीजिये।

(दूत का प्रवेश)

दूत–जय हो, देव!

राज्य०–क्या समाचार है?

दूत–दुर्ग के भीतर बहुत थोड़ी सेना है और देवी राज्यश्री भी वहीं हैं।

राज्य०–मैं अभी आक्रमण करना चाहता हूँ।

भण्डि–विश्राम कीजिये। आज भर केवल; कल ही आप देखेंगे कि विजय लक्ष्मी आपका स्वागत करती है।

राज्य०–ऐसा ही हो, भण्डि!

———

तीसरा दृश्य

दुर्ग के भीतर एक प्रकोष्ठ में राज्यश्री और विमला

विमला—सिर की वेदना तो अब कम है न ? महादेवी !

राज्य०—वेदना रोम-रोम में खड़ी है, विमला ! चेतना ने तो भूली हुई यातनाओं, अत्याचार और इस छोटे-से जीवन पर संसार के दिये हुए कष्टों को फिर से सजीव कर दिया है। सखी ! औषधि न देकर यदि तू विष देती तो कितना उपकार करती—

कमला—भगवान पर विश्वास रखिये।

देवगुप्त का प्रवेश

राज्य—यह कौन !

देव०—मैं हूँ देवगुप्त। राज्यश्री ! तुम्हें स्वस्थ देखकर मैं प्रसन्न हुआ।

विमला—अधखिली वसंत की कली को जलती हुई धूल में गिरा कर भीषण अंधड़ चिल्ला कर कहता है—"तुम स्वस्थ हो !" शाँत सरोवर की कुमुदिनी को पैरों से कुचल कर उन्मत्त गज, उसे सहलाना चाहता है !

देव०—तब तुम इस राज-मन्दिर को वन्दीगृह बनाना चाहती हो ?

राज्य०—नरक में रहना हो सो भी अच्छा !

देव०—तब यही हो (ताली बजाता है—चार सैनिकों का

प्रवेश) देखो आज से ये लोग बन्दी हैं। सावधान! इनके साथ वही, व्यवहार करना होगा।

प्रस्थान

चौथा दृश्य

प्रकोष्ठ में मधुकर। रात्रि

मधु–देखूँ, अब क्या होता है ?

विकटघोष पीछे से आकर चपत लगाता है

मधु–(सिर सहलाता हुआ)—क्या यही होना था ? भाई, तुम हो कौन ? मुझसे तुमसे कब का परिचय है ?—यह परिहास कैसा ?

विकट०—यह तुम नहीं जानते—हम तुम साथ ही न वहाँ पढ़ते थे। तुम एक चपत लगाकर गुरुकुल छोड़ के भाग आये और राजसहचर बनकर आनन्द करने लगे। यह उसी का प्रतिशोध है। स्मरण हुआ ? मेरा नाम है विकटघोष !

मधु०—(विचारने की मुद्रा से) होगा। होगा भाई, वह तो पाठशाला का लड़कपन था; अब हम-तुम दोनों बड़े हो गये। फिर, वैसी बात न होनी चाहिये।

विकट०—यह सब तो मित्रता में चलता ही रहता है, पर तुमने मुझे पहचाना ठीक ?

मधु०—ठीक। क्या नाम ?

विक्ट०—विकटघोष।

मधु०—ओह! तब आप शंख-घोष करते। यह मेरी रोएँदार खँजड़ी क्यों बजा रहे थे! आप इतनी रात को अतिथि!

विकट०—मैं शीघ्र चला जाऊँगा।

मधु०—हाँ! अधिक कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। आप को दूर जाना भी होगा?

विकट०—चुप रहो; पहले यह तो पूछा ही नहीं कि तुम क्यों आये थे।

मधु०—आप जाइये, मैं पूछ लूँगा। उधर! (राह दिखलाता है)

विकट०—मुझे तुम्हारी महारानी से मिलना है।

मधु०—तब आपको उस ठाठ से आना चाहिए था। यह भयानक दाढ़ी और बिच्छू की दुम—नहीं-नहीं, डंक-सी मूँछ उहुँ! आप तनिक भी सहृदय नहीं। इसे कुछ नीची कीजिये!

हाथ बढ़ाता है

विकट०—(झपट कर) सीधे बताओ किधर से जाना होगा?

मधु०—दो पथ हैं। एक सुन्दर राजमन्दिर में जाता है, जहाँ श्रीमती सुरमादेवी विराजमान हैं और दूसरा बन्दीगृह में जहाँ राज्यश्री हैं। आप किस रानी से भेंट किया चाहते हैं?

विकट०—(चौंककर)—सुरमा ! कौन ?

मधु०—अजी ! वह नई रानी है। इस नये राज्य की ! समझते नहीं, राजा लोग जब नये राज्य बना सकते हैं तो उस में रानी वही पुरानी रक्खेंगे ?

विकट०—यह कहाँ की राजकुमारी हैं ?

मधु०—अरे इसी बुद्धि पर तुम रानी से मिलने चलो हो। (उसे छुरा निकालते देख कर डरता हुआ)—पहले उसे भीतर करो, नहीं तो मेरे प्राण बाहर आ जायँगे !

विकट—तो बताओ शीघ्र।

मधु०—वह तो इसी कान्यकुब्ज की एक मालिन है। उसे भीतर ....(भयभीत होकर छुरे को देखता है)

विकट०—(छुरे को भीतर रखता हुआ सोचता है)—तो क्या वही सुरमा—महारानी ! देवगुप्त की प्रणयिनी ! उस के यहाँ कौन-सा पथ जायगा ?

मधु०—यही- सामने दिखा कर)-और उधर—(बताकर)—आप राज्यश्री से मिल सकते हैं।

विकट०—अच्छा अब तुम विश्राम करो।

उसका हाथ-पैर बाँधने लगता है

मधु०—यह क्या ? यही मित्रता है !

विकट०—चुप रहो—(संकेत करता है)

(दूसरा दस्यु आता है, उसे वहीं छोड़कर विकटघोष चला जाता है, दूसरा दस्यु उसे घसीट कर ले जाता है।)

पांचवां दृश्य

(सुरमा गा रही है)

सम्हाले कोई कैसे प्यार
मचल-मचल उठता है चंचल
भर लाता है आँखो में जल
बिछलन कर, चलता है उस पर
लिये व्यथा का भार

सिसक-सिसक उठताहै मन में,
किस सुहाग के अपनेपन में,
छुई-मुई-सा होता, हँसता,
कितना है सुकुमार

देव०—सुरमा ! तुम्हारा स्वर कितना मधुर है !

नेपथ्य से—

"यह तुम्हारे दुर्भाग्य के मन्द ग्रह की प्रभा है ?"

देव०—(चौंककर) यह कौन ?

दूर से कोलाहल की ध्वनि

देव०—यह क्या ?

नेपथ्य से—

"यह है तुम्हारी सुख-निद्रा का अन्त सूचक शत्रु सेना का शब्द । मूर्ख ! अब भी भागो ।"

देवगुप्त भयभीत सुरमाके पास से उठ कर भाग जाता है।

सुरमा–'प्रियतम ! सुनो-सुनो" कहती रह जाती है ।

(विकटघोष का प्रवेश)

सुरमा—हे भगवान !

विकट०—रमणी ! जब तुम्हें कोई चलने को कहता है तो पैरों में पीड़ा का अनुभव करने लगती हो। जब विश्राम का समय होता है तो पवन से भी तीव्रगति धारण करती हो। तुम स्नेह से पिच्छल, जल से अधिक तरल, पत्थर से भी कठोर ! इन्द्रधनुष से भी सुन्दर बहुरंगशालिनी ! स्त्री ! तुमको......

सुरमा—तुम कौन हो ? यक्ष नहीं, तुम्हारा स्वर तो परिचित-सा है !

विकट०—(बनावटी बाल अलग करके)—परिचय ? तुम लोगों से परिचय आकाश-नट के डूबते हुए तारों का-सा है— उज्वल आलोक फैला कर अंधकार में विलीन हो जाना। प्रवञ्चना की पुजारिन ! युवती, रमणी सुरमा ! तुमने मुझे पहचाना ?

सुरमा–पहचानती हूँ शांति भिक्षु ! मेरा अपराध क्षमा करोगे !

शांति०—अपराध का पता लगा है अभी, सुरमा ! मैंने तो यही कहा था कि–"अभी विलम्ब है, थोड़ा ठहरो"–तब तुमने समीर की-सी गति धारण कर ली, आँधी चल पड़ी। ठहरने का क्षण समय की सारणी से लोप हो गया। वाह-री छलना !

सुरमा–क्षमा करो शांतिभिक्षु !

विकट०—अभी नहीं सुरमा ! विलम्ब है ।

प्रस्थान

छठा दृश्य

राज्यश्री बन्दीगृह में

नरदत्त–कौन न कहेगा कि महत्त्वशाली व्यक्तियों के सौभाग्य अभिनय में धूर्त्तता का बहुत हाथ होता है। यदि किसी साधारण मनुष्य का यही काम होता जो महाराज देवगुप्त ने किया है, तो वह चोर, लम्पट और धूर्त आदि उपाधियों से विभूषित होता। परन्तु उन्हें कौन कह सकता है ?–(राज्यश्री को देख कर)–अहा, कैसा देवी का-सा रूप है ! देखते ही श्रद्धा होती है ।

अन्य प्रहरियों का प्रवेश

नर०–क्यों जी, तुम लोग अब तक कहाँ थे ? बड़ा विलम्ब किया !

एक–आप को क्या मालूम नहीं ? उधर इतना बखेड़ा फैला है !

नर०–क्या ? कुछ सुनें भी । हम तो यहीं थे न !

एक–राज्यवर्धन की सेना घुसी चली आ रही है !

नर०–और महाराज ?

एक–जायँगे कहाँ ? दुर्ग-द्वार पर तो भीषण युद्ध हो रहा है।

नेपथ्य में रण-वाद्य और कोलाहल

नर०–अच्छा, तुम लोग सावधान रहना। मैं देख आऊँ–

प्रस्थान

दूसरा–क्या कहें, यह चुड़ैल भी हम लोंगो के पीछे लगी है, नहीं तो अब तक हम लोग नौ-दो ग्यारह होते!

राज्यश्री–(चैतन्य होकर)–क्यों जी यह युद्ध का शब्द कैसा?

रण-कोलाहल। विकटघोष का प्रवेश

विकट०–क्यों यही गप्प लड़ाने का समय है? जाओ— शीघ्र युद्ध में जाओ, महाराज ने बुलाया है। मुझे राज्यश्री को दूसरे स्थान में ले जाने की आज्ञा हुई है।

पहिला–तब तो आपके पास कोई आज्ञापत्र होगा? ऐसे हम लोग कैसे टलें!

तीसरा–यह तो पागल है, भला आप असत्य कहेंगे। हम लोग जाते हैं (स्वगत) किसी प्रकार पिण्ड तो छूटे!

सब का प्रस्थान

विकट०–भद्रे! शीघ्र चलो। महाराजकुमार राज्यवर्धन का आदेश है कि राज्यश्री को युद्ध से कहीं अलग ले जाओ।

राज्य०–क्या? भाई राज्यवर्धन!

विकट–हाँ, उन्होंने कहा है कि युद्ध के और भीषण होने की संभावना है, इस लिये आपको शीघ्र ही किसी सुरक्षित स्थान में पहुँचना चाहिये।

राज्य०—तो चलो।

मिकट०—(कुछ विचार कर ताली बजाता है—दो दस्युओं का प्रवेश) देखो, उसी गुप्त-मार्ग से इन्हें ले चलो। मैं अभी आता हूँ।

राज्यश्री का दस्युओं के साथ प्रस्थान

(नेपथ्य से सुरमा का क्रन्दन। रण-कोलाहल। विकटघोष का उस ओर जाना, सुरमा को लिये हुए फिर आना। सुरमा मूर्च्छित-सी।)

विकट०—सुरमा! सावधान! नहीं तो प्राण न बचेंगे।

सुरमा—(चैतन्य होकर) कौन शांति—

विकट०—चुप, तुम चाहे कितनी भी कुटिलता ग्रहण करो, पर मैं तुम्हें.........

सुरमा०—मेरे शांति—मेरे प्रिय!

विकट०—इस अभिनय का काम नहीं। चलो, वह देखो, युद्ध समीप आता जा रहा है। अरे, लो वे इधर ही आ रहे हैं!

(विकटघोष सुरमा को लेकर जाता है। एक ओर से देवगुप्त, दूसरी ओर से राज्यवर्धन का प्रवेश)

राज्वर्धन—दुष्ट मालव! अब भागने से काम न चलेगा—सावधान! तेरी नीचता का अन्त समीप है।

देवगुप्त—तो मैं प्रस्तुत हूँ।

(युद्ध। देवगुप्त की मृत्यु।)

यवनिका पतन

तीसरा अंक

पहला दृश्य

पथ में

सुरमा–तब ?

विकठ–आओ, हम-तुम फिर से समझौता करलें।

सुरमा–(ठण्डी श्वास लेकर) स्वीकार है।

विकट०–तो चलो, गौड़ के शिविर में चलें।

सुरमा–वहाँ क्या करना होगा ?

विकट०–वहाँ चलने पर बताऊँगा, पहले किसी प्रकार शिविर में घुसना होगा।

नरेन्द्रगुप्त का एक सहचर के साथ प्रवेश–विकटभट और सुरमा का छिप जाना।

नरेन्द्र०–वयस्य ? बड़ी विपम समस्या है। राज्यवर्धन आज मेरे शिविर में आवेगा, बस यही अवसर है। मगध के गुप्तों का गौरव इन वर्धनों के चरणों में लोट रहा है। मुझसे यह नहीं देखा जाता। मगध आज नतफण मन्त्रमुग्ध सर्प है, उसका यह नीरव अपमान मुझसे नहीं देखा जाता।

सहचर—इसीलिये तो परम भट्टारक ने आप को सुदूर गौड़ में भेज दिया है। आपकी तेजस्विता से आप के कुल के लोग भी सशंक हैं।

नरेन्द्र - आज इसका निपटारा करना है। राज्यवर्धन मेरे हाथ में होगा, उसका अन्त होने पर हर्षवर्धन—कल का छोकरा-उसे उँगलियों पर नचा दूँगा!

सह०—परन्तु क्या आप स्वयं हत्या करेंगे?

नरेन्द्र०-नहीं यह तो असम्भव है। मुझे एक साहसिक और वेश्या की आवश्यकता है, जिस में वह प्राणों के साथ कीर्त्ति से भी वंचित रहे। परन्तु मिले जब तो—

सह०—यह घटना आकस्मिक रूप से होनी चाहिये। तो फिर कहिये, मैं खोज लाऊँ।

(विकटघोष संकेत करता है, दोनों बाहर आते हैं)

नरेन्द्र०-तुम कौन हो?

विकट०-हम लोग गायक हैं।

नरेन्द्र०-(देखकर)-क्यों जी यह तो हम लोगों के काम का मनुष्य हो सकता है? (विकटभट से) तुम गायक नहीं हो, तुम्हारे मुख पर तो कला की एक भी रेखा नहीं है। स्पष्ट रक्त और हत्या का उल्लेख तुम्हारे ललाट पर है।

विकट०-जीवन बड़ा कठोर है, इसकी आवश्यकता जो न करावे। सच बात तो यह है कि मुझे अपने सुख के लिये सब कुछ करना अभीष्ट है।

नरेन्द्र०—यही तो पुरुषार्थ की बात है, तुम में पूर्ण मनुष्यता है। (सुरमा की ओर देखकर) और तुम अवश्य गा सकती हो। चलो, मुझे तुम दोनों की आवश्यकता है।

विकट०—तो मेरा पुरस्कार ?

नरेन्द्र०—काम देखकर मिलेगा। आज शिविर में राज्यवर्धन का निमन्त्रण है उसी उत्सव में तुम लोगों को चलना होगा।

विकट—(अलग सुरमा से) राज्यवर्धन—सुरमा, तुम्हारे भाग्याकाश का धूमकेतु और मेरे लिये तो सभी शत्रु हैं। बोलो, क्या कहती हो ?

सुरमा—जो करो, मैं प्रस्तुत हूँ। (अलग)—हाय ! दूसरा पथ नहीं, यदि मैं कहती हूँ कि नहीं तो, उहूँ......फिर, यही सही, इस ओर से भी प्राण नहीं बचता।

विकट०—हम लोग चलेंगे।

नरेन्द्र—तो चलो।

सब जाते हैं

मधुकर का प्रवेश

मधु०—प्राण बचे बाबा, अब इन राजाओं के फेर में न पड़ूँगा। ओह, उस विकटघोष का बुरा हो, कहाँ से टपक पड़ा ! राज्यश्री भी कहीं इधर-उधर चली गई होगी। सुरमा का दुर्भाग्य ! वह भी कुछ ही दिनों के लिये रानी बन गई थी ! मुझे छुट्टी मिली इस प्रतिज्ञा पर कि मैं राज्यश्री को

खोज निकालूँगा। पर जाऊँ किधर ? वह बड़े-बड़े शिविर पड़े दिखाई देरहे हैं, तो उधर ही चलूँ। हूँ, सोंधी बास तो आ रही है—चलूँ ? नहीं अब भागो; ब्राह्मण देवता ! भीख माँग कर खा लेना ठीक है, पर किसी राजा के यहाँ कदापि न.........

प्रस्थान

दूसरा दृश्य

स्थान—कानन, राज्यश्री को लिये हुए दोनों दस्यु)

राज्य०—मैं दुखी हूँ, दस्यु तुम धन चाहते हो, पर वह मेरे पास नहीं।

दस्यु—परन्तु मैं तुमको छोड़ूँ कैसे, क्या करूँ ? तुम मुझे कुछ धन दिलवा दो।

राज्य०—अर्थी ! तुम इतने मूर्ख हो ! मेरा राज्य छिन गया, सब लुट गया। भला अब मैं कहाँ से दिलवा दूँ ?

दस्यु—तब मैं तुम्हें किसी के हाथ बेच दूँगा। क्यों जी, यही ठीक रहा।

दूसरा०—और क्या किया जायगा।

राज्य०—तब अच्छा हो कि मेरे जीवन का अन्त हो जाय ! भगवान्, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो !

नेपथ्य से गाना

अब भी चेत ले तू नीच !
दुःख-परितापित धरा को स्नेह-जल से सींच ॥

शीघ्र तृष्णा-पाश से नर ! कण्ठ को निज खींच।
स्नान कर करुणा-सरोवर, धुले तेरा कीच।

पहिला०—यह क्या ?

दूसरा०—हम लोग क्या कर रहे हैं ?

दिवाकरमित्र का प्रवेश

दिवा०—क्षणिक संसार ! इस महाशून्य में तेरा इन्द्रजाल किसे नहीं भ्रांत करता। करुणे ! इस दुःखपूर्ण धरणी को अपनी क्रोड़ में चिरकालिक शाँति दे, विश्राम दे। (देखकर)—अरे, यह वनलक्ष्मी-सी कौन है ? विषाद की यह कालिमा क्यों ? और तुम लोग कौन हो, भाई ?

दस्यु—हम लोग दस्यु हैं।

दिवा०—और तुम देवी ?

राज्यश्री—जब विपत्ति हो, जब दुर्दशा की मलिन छाया पड़ी हो, अपने उज्ज्वल कुल का नाम बताना, उसका अपमान करना है। देव, मैं एक विपन्न अनाथा हूँ ! जीवन का अन्त चाहती हूँ—मृत्यु चाहती हूँ।

दिवा०—यह पाप ! देवि, आत्महत्या या स्वेच्छा से मरने के लिये प्रस्तुत होना, भगवान् की अवज्ञा है। जिस प्रकार सुख दुःख उसके दान हैं, उन्हें मनुष्य झेलता है, उसी प्रकार प्राण भी उसी की धरोहर है। तुम अधीर न हो। क्यों भाई तुम प्राण चाहते हो या धन ?

पहिला०—मुझे तो धन चाहिये।

दिवा०—तो चलो, मेरे कुटीर पर जो कुछ है, सब ले लो।

दूसरा०—किन्तु मुझे तो अपनी शाँति दीजिये। देव, मैं इस कर्म्म से अत्यन्त व्यथित हो गया हूँ! अपने अब पद-रज की विभूति दीजिये।

दिवा०(हँस कर)—अच्छा वैसा ही होगा; चलो सब लोग आश्रम पर। रेवातट पर कुमार हर्षवर्द्धन और पुलकेशिन् चालुक्य का युद्ध चल रहा है। अनेक लोग हताहत हो गये हैं। क्या तुम लोग उन आहतों की सेवा-शुश्रूषा कर सकोगे।

राज्य०—क्या? कुमार हर्षवर्द्धन!

दिवा०—हाँ देवी, चलो आश्रम समीप है!

प्रस्थान

———

तीसरा दृश्य

रेवातट की युद्ध-भूमि। रण-वाद्य बजता है, एक ओर से हर्षवर्द्धन और दूसरी ओर से पुलकेशिन अपनी सेना के साथ आते हैं।

हर्ष०—चालुक्य! तुम वीर हो।

पुलके०—उत्तरापथेश्वर! अभी मुझे अपनी वीरता की परीक्षा देनी है, क्योंकि विदेशी हूणों को विताड़ित करने वाले महावीर हर्षवर्द्धन के शस्त्र का आज ही सामना है।

हर्ष०—पर मैं अब युद्ध न करूँगा। (हाथ उठाकर कर)—ठहरो, कोई अस्त्र न चलावे।

(रण-वाद्य बन्द हो जाते हैं)

पुलके०—क्यों? युद्ध से विश्राम क्यों?

हर्ष०—मुझे साम्राज्य की सीमा नहीं बढ़ानी है। वसुंधरा के शासन के लिये एक प्रवीर की आवश्यकता होती है, सो इधर दक्षिणापथ में उसका अभाव नहीं। महाराष्ट्र सुशासित वीर-निवास है। मुझे तो उत्तरापथ के द्वार की ही रक्षा करनी है।

पुल०—नहीं, नहीं, बातों से काम नहीं चलेगा सम्राट्! आज मुझे क्षात्र-धर्म की परीक्षा देनी है! युद्ध होगा।

हर्ष०—मैं इस वीरोन्माद, इस उत्साह का आदर करता हूँ। परन्तु चालुक्य! मेरा मन व्यथित हो उठा है। मैंने सुना है कि मेरी अनाथा दुखिया बहिन कहीं इसी विन्ध्यपाद में है। मैं अभी जाना चाहता हूँ।

पुल०—क्या! महारानी राज्यश्री अभी जीवित हैं?

हर्ष—हाँ पुलकेशिन! मुझे अभी-अभी चर ने यह सन्देश दिया है। दक्षिणापथेश्वर, मैं अभी विदा चाहता हूँ।

पुल०—महावीर, जैसी आपकी इच्छा। मैं आपसे संधि, युद्ध, सब में अपने को धन्य समझता हूँ।

हर्ष०—(हाथ फैलाकर)—तो आओ भाई!

(दोनों गले से मिलते हैं)

चौथा दृश्य

(सरयू का तट—अशोक कानन, विकटघोष अपने साथी डाकुओं के साथ बैठा हुआ; सामने देवी की उग्र मूर्ति)

विकट०—सुरमा अभी तक सब नहीं आये! वह चीनी यात्री अवश्य बड़ा धनी होगा, सुरमा! तब तक तुम कुछ गाओ न!

सुरमा—(गाती है—)

जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी
तब क्यों फिर बात बनाने लगे।
सब रीति प्रतीति उठी पिछली
फिर भी हंसने मुसकाने लगे॥
मुख देख सभी सुख खो दिया था
दुख मोल इसी सुख को लिया था।
सर्वस्व ही तो हमने दिया था
तुम देखने को तरसाने लगे॥

सुएनच्वांग को लिये हुए डाकुओं का प्रवेश—

विकट०—हा हा हा हा! आ गया! क्यों धर्म कमाने आया था तो पूँजी के लिये कुछ रुपये भी लाया था?

सुएन०—दस्युराज! मैं रुपये लेकर नहीं आया हूँ। मेरे पास थोड़ा-सा धर्म है और कुछ शान्ति है—तुम चाहते हो लेना?

विकट०—मूर्ख ! शांति को मैंने देखा है, कितने शवों में वह दिखाई पड़ी ! शांति को मैंने देखा है, दरिद्रों के भीख माँगने में ! मैं उस शांति को धिक्कारता हूँ । धर्म को मैंने खोजा—जीर्ण पत्रों में, पण्डितों के कूटतर्क में, उसे बिलखते पाया; मुझे उसकी आवश्यकता नहीं !

सुएन०—तब क्या चाहिये ?

विकट०—या तो धन दे या रक्त। जो मुझे धन नहीं देता, उसे मेरी देवी को रक्त देना पड़ता है !

सुएन०—रक्त से किस की प्यास बुझती है, जानते हो ?—पिशाचों की, पशुओं की ! तुम तो मनुष्य हो ।

विकट०—ओह ! मेरी प्रतिमा—मेरी क्रूरता की देवी—नर-बलि चाहती है । तू बहुत स्वस्थ है, विदेशी ! मैंने राजरक्त से पहले-पहल हाथ रंगा था, वह कितना लाल था ! उसका मनोरंजन कितना ललित था ! सुरमा ! स्मरण है वह राज्यवर्धन की हत्या ? बड़ी उत्साहवर्धक थी वह !

सुरमा—प्रिय, वह भयानक दृश्य था—आह ! मैं गा रही थी, राज्यवर्धन के हाथ में मदिरा का पात्र था और तुम थे खड़े । उसकी मदिर दृष्टि मुझ पर पड़ी थी । अनुचर सब मद-विह्वल थे । सहसा तुम्हारी आँखें चमक उठीं, ज्योंही राजकुमार ने मेरी ओर हाथ बढ़ाया—दूसरा पात्र माँगा, तुमने कितनी भीषणता से प्रहार किया ! वह छुरी पत्थर

का कलेजा भी छेद देती—राज्यवर्धन तो साधारण मनुष्य था।

विकट०—हाँ सुरमा! वह मेरा हाथ था! अब तो मैं रक्त देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ! यात्री! तो आज ही तुम्हारी बली होगी; प्रस्तुत रहो!

सुएन०—मुझे प्रार्थना कर लेने दो—

सुरमा—देवी की जय!

(सुरमा के साथ सब विकट नृत्य करने लगते हैं। भिक्षु प्रार्थना करता है। अकस्मात् आँधी के साथ अंधकार फैलता है। सब चिल्लाने लगते हैं—"दस्युपति! उस भिक्षु को छोड़ दो"! "उसी के कारण यह विपत्ति है"! "छोड़ो उसे!"–प्रार्थना करते हुए सुएनच्वांग को सब धक्का देकर हटा देते हैं।)

——

पाचवां दृश्य

दिवाकरमित्र का तपोवन

राज्यश्री—दुखों को छोड़ कर और कोई न मुझसे मिला मेरा चिर सहचर! परन्तु अब उसे भी छोड़ूँगी। आर्य्य, मुझे आज्ञा दीजिये। स्त्रियों का पवित्र कर्तव्य पालन करती हुई इस क्षण-भंगुर संसार से विदाई लूँ। नित्य की ज्वाला से यह चिता की ज्वाला प्राण बचावे।

दिवा०—देवी, मैं यह कदापि नहीं कह सकता। यह धर्म नहीं,

आत्म-हत्या है। सती होना जल मरने से ही नहीं हो सकता। यह तो मैं नहीं कह सकता कि इस पुतले को बना कर दुख का सम्बल देकर विधाता ने क्यों अनन्तपथ का यात्री बनाया; पर इस से इतना भयभीत क्यों रहूँ? उस करुणानिधान की स्नेहानुभूति इसी में तो झलकती है। प्राणी दुखों में भगवान के समीप होता है, देवी! उसको... ...

राज्य०—परन्तु अब इस हृदय में बल नहीं है, महात्मन्! आज्ञा दीजिये। मेरे इस अन्तिम सुख में बाधा न दीजिए—(प्रार्थना करती है)

जय जयति करुणा-सिन्धु।
जय दीनजन के बन्धु ॥
जय अखिल लोक ललाम।
जय जय भुवन अभिराम ॥
जय पतित पावन नाम।
जय प्रणत जन सुख-धाम ॥
जय देव धर्म स्वरूप।
जय जय जगत्पति भूप ॥

(चिता प्रज्वलित होती है। राज्यश्री का उस में प्रवेश करने का उपक्रम, सहसा—'ठहरो-ठहरो!' का शब्द। दस्यु, जो भिक्षु हो गया था, दौड़ता हुआ आता है)

राज्य०—अब क्या?

भिक्षु—सम्राट् हर्षवर्धन आ रहे हैं।

राज्य०—कौन भैया हर्ष—

हर्ष का प्रवेश

राज्य०—आओ हर्ष! इस अन्तिम समय में तुम आ गये! मेरा सारा विषाद चला गया।

हर्ष०—हे भगवान! मैं यह क्या देखता हूँ। प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर लाखों प्राणों के संहार करनेवाले हृदय, और भी वज्र हो जा! वहिन, मैंने इतना रक्तपात किया, क्या इसी लिये कि राज्यश्री जल मरे और इतना दृप्त राजचक्र फिर मेरी असफलता पर एक बार हँस दे? उत्तरापथ के समस्त नरपति आज इन चरणों में प्रणत हैं। वहिन यह मरण का समय नहीं है; चलो एक वार देखो कि तुम्हारे नीच शत्रुओं का क्या परिणाम हुआ। कान्यकुब्ज के सिंहासन पर वर्द्धन-वंश की एक वालिका ऊर्जस्वित शासन कर सकती है, यही तो मुझे दिखला देना था!

राज्य०—भाई हर्ष यह रत्नजटित मुकुट तुम्हें भगवान ने इस लिये नहीं दिया कि लाखों सिरों को तुम पैरों से ठुकराओ। मेरी शांति ढूँढ़ कर तुमने उसे इतनी वड़ी नर-हत्या में पाया! हर्ष! विचार करो, तुमने मेरे सदृश कितनी स्त्रियों को दुखिया बनाया! तुम्हें क्या हो गया था?

हर्ष०—(सिर नीचा करके)—मेरा भ्रम था! किन्तु अव?

राज्य०—अव मुझे आज्ञा दो कि मैं तुम्हारा प्रायश्चित करूँ

और सती धर्म का पालन भी ।

हर्ष०—बहिन ! हम लोग दो ही तो बचे हैं। भाई राज्यवर्धन की हत्या हुई, अब तुम भी जाना चाहती हो, मेरे वर्धन-कुल की यह दशा ! तो फिर यही हो राज्यश्री !

राज्य०—क्या भाई राज्यवर्धन भी नहीं रहे !

हर्ष—हाँ बहिन ! जब उन्होंने दुष्ट मालव को दण्ड देकर कान्य-कुब्ज का उद्धार किया, उसी समय बंधुनामधारी नरेंद्र-नीच नरेंद्र-ने षड्यंत्र से उनका प्राण नाश कराया ! आज तक भण्डि उसका पीछा कर रहे हैं, वह भाग रहा है। तो फिर मैं ही क्या करूँगा ?—(दिवाकर मित्र से)—आर्य्य ! मुझे भी काषाय दीजिये ।

राज्य०—(चिता से हट आती है)—भाई ! तुम भी......! नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं तुम्हारे लिये जीवित रहूँगी । मेरे अकेले भाई ! मुझे क्षमा करो, मैं कठोर हो गई थी ।

हर्ष०—(बड़ी प्रसन्नता से) चलो ! पराक्रम से जो सम्पत्ति, शस्त्र-बल से जो ऐश्वर्य मैंने छीन लिया है, उसे पात्रों को दे दूँ। हम राजा होकर कंगाल बनने का अभ्यास करें ।

राज्य०—चलो भाई जहाँ तक बन पड़े, लोक-सेवा करके अंत में हम दोनों साथ ही काषाय लेंगे ।

सब का प्रस्थान

———

चौथा अंक

पहला दृश्य

कानन में—साधु के वेष में विकटघोष

सुरमा—यह आज नया रूप कैसा ?

विकट०—कान्यकुब्ज में स्वर्ण और रत्न की वर्षा हो रही है सुरमा ! राज्यश्री अपने समस्त कोष का अद्भुत दान कर रही है। वहाँ भी लूटना चाहिये न !

सुरमा—अब समझी। मुझे तो तुम्हारा यह रूप देखकर बड़ा संदेह हुआ था।

विकट०—यही न कि मैं फिर साधु तो नहीं हो गया ?–(हँसता है)–

(उसके साथी दस्यु, साधु के रूप में आते हैं)

एक दस्यु–परन्तु अब हम लोग कहां चलेंगे, कान्यकुब्ज का दान तो अन्तप्राय है। अब सुना गया है कि यहीं प्रयाग में ही फिर से दान होगा। और वह चीनी भिक्षु भी साथ ही आ रहा है !

विकट०—चीनी भिक्षु !—न जाने क्यों उसे इतना आदर मिल रहा है !

दूसरा०—और साथ ही साथ धन भी। सुना है कि पञ्चनद के

उदितराज, कामरूप के कुमारराज, वलभी के ध्रुवभट भी यहाँ आ रहे हैं और सम्राट हर्षवर्धन सर्वस्व दान करेंगे।

सुरमा—तो मैं भी चलूँगी।

विकट०—इसी रूप में ?

(सुरमा नैपथ्य में जाती है और अवधूतिनी बनकर आती है)

सुरमा—

"अलख अरूप !"

तेरा नाम, सब सुखधाम,
जीवन ज्योति स्वरूप।
मंगल गान, एक समान,
सब छाया की धूप॥

"अलख अरूप"

(सब गाते हुए जाते हैं)

(दो बौद्ध साधुओं का प्रवेश)

धर्मसिद्धि—इतना अपमान ! यह चीनी भिक्षु भयानक पण्डित निकला !

शीलसिद्धि—महायान ! तान्त्रिक उपासनाओं से भरा हुआ एक इन्द्रजाल ! उसकी उन्नति ! भगवान तथागत ! तुम्हारे सत्य का इतना दुरुपयोग !

धर्म०—अज्ञान प्रायः प्रबल हो जाता है और असत्य अधिक

आकर्षक होता है। किंतु यह चीनी यात्री और हर्ष दोनों ही इसके प्रधान कारण हैं।

शील०—फिर उपाय ?

धर्म०—उपाय होगा। देखा नहीं—यह दस्युओं का दल साधु बनकर जा रहा है। दान का अतिरूप है यह; जब ऐसे लोग भी उस पुण्य-भाग के अधिकारी होंगे, तब वह स्वयं विकृत होगा। चलो महास्थविर से कहना है।

शील०—वे तो अत्यन्त उत्तेजित हैं।

धर्म०—चलो भी।

दोनों का प्रस्थान

दूसरा दृश्य

प्रयाग में गंगातट

हर्ष, सपरिवार

राज्य०—भाई, भण्डि ने क्या कहा ?

हर्ष०—गुप्तकुल का दुर्नाम नरेन्द्र प्राणों के लिये अत्यन्त भयभीत है। वह संधि का प्रार्थी है और वह कहता है कि उस हत्या में वेश्या का सम्पर्क था, उसका नहीं।

राज्य०—फिर भी वह क्षम्य है। अपना सम्बन्धी है। भाई, जाने दो ! आज हम लोग दान देने चल रहे हैं, क्षमा करो भाई !

हर्ष०—तब तुम्हारी इच्छा । मेरा हृदय नहीं क्षमा करेगा, मैं अशक्त हूँ—

(एक दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—जय हो देव !

हर्ष०—क्या है ?

दौवा०—महाश्रमण पर आज एक भयानक आक्रमण हुआ था; किन्तु वे बच गये !

हर्ष०—महाश्रमण पर ! उपद्रवी पकड़े गये ?

दौवा०—नहीं देव ! वे निकल भागे । ऐसा विदित होता है कि महाश्रमण के प्राण लेने का वह एक षडयन्त्र था, जिसके भीतर धार्मिक द्वेष काम कर रहा था ।

हर्ष०—धर्म में भी यह उपद्रव ! राज्यश्री, देखो बहिन ! सब स्थानों पर क्षमा की एक सीमा होती है—(दौवारिक से) जाओ डौंड़ी पिटवा दो कि यदि महाश्रमण का एक रोम भी छू गया तो समस्त विरोधियों को जीवित जलना पड़ेगा ।

राज्य०—चलो भाई ! हम लोग यह महासमारोह दूर से देखें ।

(सबका प्रस्थान । दूसरी ओर से दो भिक्षुओं का प्रवेश)

पहला—यही होना चाहिये । अब धर्म नहीं बचेगा ।

दूसरा—अब दूसरा उपाय नहीं ।

पहला—तो फिर वही ठीक किया जाय ।

दूसरा—वह तो प्रस्तुत है।

पहला—तो फिर चलो।

दोनों का प्रस्थान

———

तीसरा दृश्य

प्रयाग का दूसरा भाग, सुरमा का प्रवेश

सुरमा—जैसे अंतिम अभिनय हो। आज यह क्या होगा? इतना बड़ा उत्पात ऐसे ही चला करेगा? असम्भव है। तो मैंने रोक नहीं लिया, नहीं मानता—हत्या करते-करते कितना निर्दय-हृदय हो गया है! और मैं कहाँ चल रही हूँ, वही जीवन; किन्तु वह धीर धारा न रही! ठठा कर हँसना, नाचते हुए, स्थिर जीवन में एक आन्दोलन उत्पन्न कर देना। नहीं, यह कृत्रिम है, यह नहीं चलेगा! राज्यश्री को देखती हूँ, तब मुझे अपना स्थान सूचित होता है। पता चलता है कि मैं कहाँ हूँ! चलूँ, शायद रोक सकूँ!

(सुरमा का प्रस्थान! दो नागरिकों का व्यग्रभाव से प्रवेश)

पहला—इतना बड़ा उत्पात!

दूसरा—होम करते हाथ जले!

पहला—ना भाई! कितने ही ढोंगी घुस आते हैं—अधिक पुण्य भी करने में कितना पाप हो सकता है!

दूसरा—परन्तु वह राजा का प्रताप था! सुना नहीं कि उस नीच हत्यारे का हाथ काँप कर रह गया।

पहला–पकड़ लिया गया कि नहीं ?

दूसरा—चलो देखा जाय।

प्रस्थान

चौथा दृश्य

(बुद्ध-प्रतिमा के सम्मुख सम्राट् हर्षवर्धन और प्रमुख सामन्त-गण तथा चीनीयात्री सुएनच्वाँग)

हर्ष०—(सब मणि-रत्न दान करता हुआ अपना सर्वस्व उतार देता है। राज्यश्री से) दो बहिन! एक वस्त्र।

(राज्यश्री देती है)

हर्ष०—क्यों, मेरी इसी विभूति और प्रतिपत्ति के लिये हत्या की जा रही थी न ? मैं आज सबसे अलग हो रहा हूँ। यदि कोई शत्रु मेरा प्राणदान चाहे, तो वह भी दे सकता हूँ।

"जय महाराजाधिराज हर्षवर्धन की जय!"

सुएन०—यह भारत का देव-दुर्लभ दृश्य देखकर सम्राट्! मुझे विश्वास हो गया कि यही अमिताभ की प्रसव-भूमि हो सकती है।

(विकटघोश को लिये हुए प्रहरियों का प्रवेश)

राज्य०—महाश्रमण, मुझे भी एक वस्त्र दीजिए।

सुएन०—सर्वस्व दान करनेवाली देवी! मैं तुम्हें कुछ दूँ—यह मेरा भाग्य! तुम्हीं मुझे वरदान दो कि भारत से जो मैंने

सीखा है वह जाकर अपने देश में सुनाऊँ। लो देवि!—
(वस्त्र देता है)

(हर्ष और राज्यश्री एक-एक वस्त्र में खड़े होते हैं)

भण्डि—देव, यह दान तो हो चुका, अब मैं भी कुछ माँगता हूँ। न्याय दीजिये।

हर्ष०—यह! साहसिक! क्यों तुम मेरे प्राण चाहते थे न?

(विकटघोष चुप रहता है)

भण्डि—देव! यही नीच है जिसने कुमार राज्यवर्धन की हत्या की थी। मैंने इसे भागते हुए देखा था, परन्तु उस समय मैं नरेन्द्र के पीछे पड़ा था।

हर्ष०—क्या! यही है?

सब लोग—वध करो! वध करो!!

राज्य०—ठहरो-(देख कर)—मुझे स्मरण हो रहा है। हाँ, वही तो है! तुम हो शांतिभिक्षु?

विकट—हाँ देवी!

हर्ष०—क्या भिक्षु!

राज्य०—हाँ, यह भिक्षु था भाई! मैंने इससे कहा था—"तुम संयत करो अपने मन को, श्लाघा और आकांक्षा का पथ बहुत पहले छोड़ चुके हो—" परंतु यह......हे भगवान्!

विकट०—मेरे वध की आज्ञा दीजिये। ओह! प्राण जल रहे हैं! रोम-रोम से चिनगारियाँ निकल रही हैं..........दण्ड! दण्ड! हे भगवान्!

राज्य०—आज हम लोगों ने सर्वस्व दान किया है, भाई! आज महाव्रत का उद्यापन है। क्या एक यही दान रह जाय— इसे प्राणदान दो भाई!

"देवी राज्यश्री की जय!"

सुरमा—(दौड़ी हुई आती है)—मुझे भी महारानी! स्त्री की मर्य्यादा! करुणा की देवी! राज्यश्री! मुझे भी दण्ड!

राज्य०—अरे तू मालिन!

सुरमा—हाँ भगवति! मेरा प्रायश्चित ?

राज्य०—महाश्रमण! आज सबका प्रायश्चित्त चित्त-शुद्धि-पूर्वक काषाय लेने में है। आप इन दोनों को भी काषाय दीजिये।

(महाश्रमण आगे बढ़कर दो काषाय देता है। विकटघोष का बंधन खोला जाता है)

सुएन०—"दस्युराज! मैं रुपये लेकर नहीं आया हूँ। मेरे पास थोड़ा सा धर्म है और कुछ शांति—तुम चाहते हो लेना?" मैंने यही एक दिन तुम से कहा था, वही आज भी कहता हूँ।

(विकटघोष और सुरमा दोनों महाश्रमण के पैरों पर गिरते हैं। थालों में मणि-आभूषण और वस्त्र लिये कुमारराजा, उदितराजा इत्यादि आते हैं)

हर्ष०—यह क्या ?

कुमार०—इसी धर्म की रक्षा के लिये बोधिसत्त्व का व्रत ग्रहण कीजिये। आप भिक्षु होकर लोक का कल्याण नहीं कर

सकते। राज-दण्ड से ही आपका कर्त्तव्य पूर्ण होगा। लोकसेवा छोड़ कर आप व्रतभङ्ग न कीजिये।

सुएन०—हाँ महाराज ! इस धर्म-राज्य का शासन करने के लिये आपको राजमुकुट और दण्ड ग्रहण करना ही पड़ेगा।

राज्य०—भाई ! यहाँ त्याग का प्रश्न नहीं है। यह लोकसेवा है। ऐसा राज्य करने का आदर्श आर्य्यावर्त्त की ही उत्तमाश्री हैं।

(हर्ष नत होकर मुकुट और राजदण्ड ग्रहण करता है)

"जय महाराजाधिराज हर्षवर्धन की जय !"

"जय देवी राज्यश्री की जय ! !"

आलोक—पुष्पवर्षा

समवेत स्वर से–

करुणा-कादम्बिनी बरसे—
दुख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे।
प्रेम-प्रचार रहे जगतीतल दयादान दरसे।
मिटे कलह शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से।

यवनिका पतन

———

प्रायश्चित

(लेखक—मैटरलिंक)

पात्र

देवी—	परमात्मा की प्रतिमूर्त्ति ।
कमला—	देवी के मन्दिर की परिचारिका ।
कुमारसिंह—	कमला का प्रेमी ।
सुधा—	एक अनाथ बालिका ।
कामिनी भामिनी दामिनी सुकेशी	मन्दिर की अन्य परिचारिकाएँ ।
स्वामी जी—	मन्दिर के पुरोहित ।

———

पहला अंक

[भागीरथी के तटपर अन्नपूर्णा का विशाल मन्दिर स्थित है—
मन्दिर के दक्षिण भाग में परिचारिकाओं का निवास-स्थान है,
वामभाग में अतिथि-शाला है। सन्मुख एक विस्तृत
उद्यान है। रात्रि का समय है। देवी के भवन में
प्रदीप जल रहा है और कमला स्थिरदृष्टि से
भगवती की ओर देख रही है। मन्दिर में
सर्वत्र शाँति है ।]

कमला—दया करो, देवि, मुझ पर दया करो । मुझे जान पड़ता है मैं कुपथ में जा रही हूँ। पर मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ। वह आज आ रहा है। उस ने कह दिया है, वह आज अवश्य आवेगा । मैं उसे क्या कहूँगी, कुछ नहीं कह सकती हूँ । मैं नहीं जानती हूँ, वह क्या चाहता है। वह सदा मेरी ओर सतृष्ण नेत्रों से, अतृप्त दृष्टि से देखता है। और मैं—मुझे भी न जाने क्या हो जाता है—उसकी ओर स्थिर होकर नहीं देख सकती। क्षणभर के लिए मैं तुम्हें भी भूल जानी हूँ। कुछ दिन पहले मैं कुछ नहीं जानती थी। मैं अब भी कुछ नहीं

जानती हूँ। तो भी मेरा हृदय कभी-कभी चंचल हो जाता है। किसी अज्ञात वेदना से वह सदा पीड़ित रहता है। मैं किसी से कुछ पूछ नहीं सकती हूँ, किसी से कुछ कह नहीं सकती हूँ। अपने हृदय की वेदना मैं केवल तुम से प्रगट करती हूँ। आज तक मैंने किसी दूसरे से कुछ नहीं कहा है। यह व्यथा मैं चुपचाप सह लेती हूँ। इसे दूर करने की मुझे लालसा भी नहीं है। वेदना का भार हृदय में रखकर मुझे सुख होता है। यह कैसा सुख है, यह मेरी कैसी वेदना है!

वह कहता है, यह प्रेम है। मैं सुनती हूँ यह पाप है, अनुचित वासना है। पर क्या यह सचमुच अनुचित है? इस में सन्देह नहीं है, मैं उसे सदा देखना चाहती हूँ। इस से मुझे लज्जा होती है, संकोच होता है। पर मैं उसे देखना अवश्य चाहती हूँ। यह क्या प्रेम हो सकता है? सुनती हूँ, विवाह के बाद पुरुष से प्रेम करना अनुचित नहीं है। वह कहता था, मन्दिर से जाते ही वह मुझ से विवाह कर लेगा। उसका गुरु आकर हम लोगों को सदा के लिए, जन्मजन्मान्तर के लिए, विवाह के दृढ़ सूत्र में ग्रथित कर देगा। किन्तु यदि तुम मुझ से इतना कह दो "तू पापिनी है, तू पाप कर रही है," फिर चाहे कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊँगी, तुम्हारी गोद से मैं अलग नहीं होऊँगी, तुम्हारे ही आश्रम में रहूँगी। चार वर्ष पहले तुम्हारे सामने मैंने जो सेवा-व्रत

ग्रहण किया था, उसे भंग न करूँगी। हृदय की इस दुर्बलता को दूर कर दूँगी।

(बाहर पद-शब्द सुनाई पड़ता है)

सुनो, यह उसी का पद-शब्द है। तुम सुनती हो? वह आ रहा है, देवि! मुझे ले जाने के लिए वह आ रहा है। मुझे विश्वास है, तुम अपनी दासी को पापिनी न होने दोगी। मैं नहीं जाऊँगी।

[द्वार पर आघात होता है]

मैं क्या करूँ? वह आ गया, द्वार पर आगया!

[उठ कर जाती है और द्वार खोल देती है।]

[कुमारसिंह मन्दिर में प्रवेश करता है। उसके साथ एक बालक भी वस्त्र और आभूषण लेकर आता है। उसे रख कर वह चला जाता है।]

कमला—कुमार, तुम अकेले नहीं आये हो? वृक्ष के नीचे वह कौन खड़ा है?

कुमारसिंह—कमला कुछ भय मत करो। वह तुम्हारी ही सेवा के लिए खड़ा है। पर तुम उदास कैसी हो? तुम्हारा शरीर काँप क्यों रहा है? प्रिये, धैर्य धरो। वह देखो, आकाश में नक्षत्र भी हम लोगों के आगमन की प्रतीक्षा से चंचल हो रहे हैं। आओ, आज तुम्हें मैं अपने हृदय मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी बनाऊँ। पर तुम्हारा भय अब भी नहीं गया है। क्या तुम्हें कुछ आशंका है?

[इतने में देखता है कि कमला मूर्छित-सी हो रही है।]

प्रिये, यह क्या ? तुम मुझे कुछ उत्तर नहीं देती हो, तुम श्वास नहीं ले रही हो। तुम्हारा शरीर इतना शिथिल क्यों हो रहा है ? कमला, अधीर मत होओ, साहस कर आगे बढ़ो। कहीं ऐसा न हो कि उष:काल अपनी ज्योति के स्वर्ण जाल से हम लोगों के सुख पथ को निरुद्ध कर दे। आओ, विलम्ब मत करो।

कमला—कुमार, मुझे छोड़ दो, मैं नहीं जा सकती हूँ।

कुमारसिंह—हृदयेश्वरि, कमले, तुम मूर्छित हो रही हो। अपना मुख उठाओ। यह कैसा काँतिहीन हो रहा है। यह तुम्हारा अवगुण्ठन ही तुम्हारे श्वास को रोक कर तुम्हें कष्ट दे रहा है।

[कमला के मुख से अवगुण्ठन को हटा देता है। हठात् कुमार का हाथ वेणी पर पड़ जाने से उसका बन्धन खुल जाता है और कमला के—जिसे अब भी कुछ सुधि नहीं थी—मुख पर केश-कलाप फैल जाता है।]

कमला—(चैतन्य होकर) यह क्या है ? मेरे मुख पर यह क्या है ?

कुमार—कमला, तुम्हारे केशों ने ही तुम्हें जागरित किया है। देखती हो ? तुम अपने ही सौन्दर्य से ढंक गई हो।

[कमला के मन्दिर के परिधान को निकाल कर उसे वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत कर देता है।]

कमला—कुमार, हाय ! तुमने यह क्या किया ?

(देवी की ओर देखकर)

देवि, मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ। मैं विवश हूँ। तुम मेरी सहायता करो। भगवति, यदि तुम मुझे त्याग दोगी तो मैं किस से प्रार्थना करूँगी।

शंख-नाद होता है।

कुमारसिंह—कमला, सुनो, यह कैसा शंखनाद हो रहा है।

कमला—रात्रि का अन्तिम प्रहर व्यतीत हो गया। यह उस की सूचना के लिए है।

कुमारसिंह—प्रभात हो रहा है। देखो उन गवाक्षों से उषःकाल की अस्पष्ट आभा आ रही है।

कमला—उन गवाक्षों को मैं प्रभात के पूर्व ही खोल देती थी, जिस से जब माता जी परिचारिकाओं के साथ आवें तो प्रातःकाल का शीतल पवन, शाँतिप्रद प्रकाश और पक्षियों का मधुर कलरव उनका अभिवादन करे। प्रार्थना का समय हो रहा है यह बतलाने के लिये मैं ही घण्टा बजाती थी। यहाँ वह भिक्षापात्र रक्खा हुआ है जिस से मैं दरिद्रों को अन्न और वस्त्र देती थी। अब वे आते होंगे। उन लोगों के आने का समय हो गया है। पर आज मैं नहीं रहूँगी। आकर जब वे मुझे नहीं देखेंगे तो वे लोग भी क्या कहेंगे ! मेरे स्थान में कोई दूसरी परिचारिका काम करेगी, उन दरिद्रों को भिक्षादान करने का सौभाग्य

किसी दूसरी दासी को प्राप्त होगा।

कुमारसिंह—कमला! अब शीघ्रता करो। विलम्ब करना उचित नहीं है। थोड़ी ही देर में परिचारिकायें आने लगेंगी। तब हम लोग जा नहीं सकेंगे। हम लोगों के भविष्य जीवन का यह सुख पथ सदा के लिए बन्द हो जावेगा। सुनो, यह कदाचित उनका ही पद-शब्द है।

कमला—हाँ, वे लोग आ रही हैं, मेरी बहिन परिचारिकायें आ रही हैं। हाय, उनका मुझ पर कितना विश्वास था, कितना स्नेह था। समझती थीं, मैं बड़ी पवित्र हूँ। मेरी सेवा को वे श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। पर आज उन्हें सब जान पड़ेगा। जान लेते ही उन्हें घृणा होगी। मुझ पर उन का जितना अधिक प्रेम था, उतनी ही अब घृणा होगी। कलंक मैं साथ लेती जाऊँगी। केवल मेरा यह अवगुण्ठन और वस्त्र इस पवित्र मन्दिर में शेष रह जावेगा।

(हठात उसे किसी बात का स्मरण आ जाता है और
वह भूमि से अवगुण्ठन और वस्त्र उठा कर
देवी के चरणों के पास रख देती है।)

वे लोग ऐसा न समझें कि मैं अपने मन्दिर के उस परिधान को, जिसे उन लोगों ने मुझे प्रेमभाव से दिया था और जिस से मुझे सदा शाँति मिलती थी, मैंने अनादर कर फेंक दिया है। देवी, मैं अपना वस्त्र तुम्हें देती हूँ

अपना कार्य-भार भी तुम्हें सौंप जाती हूँ। (कुछ देर रुक कर) देवी, मेरी ओर देखो। मैं तुम्हारी ओर देख रही हूँ, तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

निश्चल दृष्टि से देवी की प्रतिमा की ओर बड़ी देर तक देखती है।

हाय, तुम तो चुप हो।

कुमारसिंह—कमला, देवी तुम्हें जाने की अनुमति दे रही है। चलो।

कमला—चलो।

(कुमारसिंह कमला का हाथ पकड़ कर प्रभात के आलोक से रंजित संसार में जाता है। मन्दिर थोड़ी देर के लिए निस्तब्ध हो जाता है। फिर अकस्मात् घण्टा बजने लगता है।)

दूसरा अंक

[क्रमशः घण्टे का शब्द बन्द होता है। मन्दिर में फिर निस्तब्धता फैल जाती है। इस के बाद देवी की प्रतिमा में अपूर्व जागृति आ जाती है। ऐसा जान पड़ता है वह आज तक किसी चिन्ता में निमग्न थी। फिर मूर्ति सिंहासन से नीचे उतर कर कमला के परिधान और अवगुण्ठन को, जिसे वह देवी के चरणों के पास छोड़ गई थी, उठा कर अपने कौशेयवस्त्र और रत्नाभरणों से अलंकृत शरीर पर डाल लेती है। फिर मधुर स्वर से कुछ गाने लगती है। गान करती हुई वह भिक्षा-पात्र लेकर मन्दिर के बृहत् द्वार पर आती है।]

देवी—

पाप-ताप में जल कर भी जो होता नहीं निराश,
नहीं छोड़ सकता जो अपना प्रेम-पूर्ण विश्वास।
रहता है क्या कभी जगत में उसका पाप कलंक ?
कैसा भी हो उसको मैं तो दूँगी अपना अंक ॥ १ ॥
याद पड़ गया रोग में हो तो करती हूँ उपचार,
डूब रहा हो तो कर लेती हूँ उसका उद्धार।
भूल गया हो पथ तो उसका देती हूँ मैं साथ,

करुणा दृष्टि से मुझे द्रवित कर देता सदा अनाथ ॥ २ ॥
सजल दृगों से मुझको प्राणों का देता जो दान,
उसकी भक्ति और श्रद्धा का रखती हूँ मैं मान।
जिसकी दया-पूर्ण सेवा में होता नहीं विकार,
निश्चल प्रेम देखकर उसका लेती हूँ मैं भार ॥ ३ ॥

[इतने में द्वार पर आघात होता है। देवी तुरन्त ही द्वार खोल देती है और एक अनाथ बालिका मलिन वस्त्र में आती है। देवी को देखकर वह द्वार ही पर छिप कर खड़ी हो जाती है और विस्मित होकर देवी की ओर दृष्टि करती है।]

देवी—आओ, सुधा उद्यान में आओ। छिप कर क्यों खड़ी होती हो सुधा ?

सुधा—तुम्हारे वस्त्रों में आज यह प्रकाश कैसा है।

देवी—उष:काल के अनन्तर सर्वत्र प्रकाश है।

सुधा—तुम्हारे नेत्रों में यह ज्योति कैसी है ?

देवी—जो लोग सदा प्रेम भाव से प्रार्थना करते हैं उनके नेत्रों में ज्योति होती है।

सुधा—तुम्हारे हाथों में यह प्रभा कैसी है ?

देवी—जो लोग दरिद्रों को भिक्षा-दान करते हैं उनके हाथों में प्रभा रहती है।

सुधा—मैं अकेली आई हूँ।

देवी—हमारे दरिद्र बन्धु कहाँ हैं ?

सुधा—उन लोगों को आने का साहस नहीं होता। उन्होंने

कुछ सुना है। उससे उन लोगों को, कमला, आने में भय होता है।

देवी—उन लोगों ने क्या सुना है?

सुधा—सुना है कि कुमारसिंह के साथ कमला भाग गई है। जो दरिद्रों को सदा भिक्षा-दान करती थी, वह कमला आज नहीं है।

देवी—क्या मैं कमला के समान नहीं हूँ?

सुधा—उन में से कुछ ने कमला को देखा भी था और वह भी उनसे कुछ बोली थी।

देवी—केवल ईश्वर ने ही कुछ नहीं देखा, उसने कुछ नहीं सुना।

[दरिद्र, रोगी, अशक्त, भिक्षुकों का दल आता है। उस में कुछ स्त्रियां भी हैं, कुछ बालक भी हैं और कुछ वृद्ध हैं। यह देख कर कि कमला आगे खड़ी हुई है वे लोग विस्मय, भय और संकोच के साथ आगे बढ़ते हैं। सब द्वार पर आकर खड़े हो जाते हैं और देवी की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हैं।]

देवी—(भिक्षापत्र लेकर)—तुम्हें क्या हो गया है? तुम लोग ठहर क्यों गये हो? शीघ्रता करो। सूर्योदय हो गया है। प्रार्थना-काल आ गया है। थोड़ी ही देर में मेरी बहिन-परिचारिकायें आजावेंगी और द्वार बन्द हो जावेगा। फिर भिक्षादान नहीं होगा। आओ, सब लोग आओ।

एक भिक्षुक (आगे बढ़कर)—माता जी, आज हम लोगों को भ्रम हुआ, हम लोगों ने—

देवी (उसे एक वस्त्र देकर)—प्रकाश होने से भ्रम दूर होगा।

दूसरा भिक्षुक (आगे बढ़कर)–हम लोगों ने रात के अंधकार में बुरा स्वप्न देखा है।

देवी (उसे भी वस्त्र देकर)—निशाकाल व्यतीत हो जाने पर अंधकार नहीं रहेगा। बान्धवगण, आओ, हम लोग किसी प्रकार का कुभाव न रक्खें। सब को क्षमा कर दें।

एक स्त्री—बहिन, मुझे अपनी माता के लिए वस्त्र चाहिए।

दूसरी स्त्री—मुझे अन्न चाहिए।

तीसरी स्त्री—मैं अपने पुत्रके लिये प्रार्थना करती हूँ, मुझे भिक्षा दो।

[दरिद्रों का दल भिक्षा के लिए देवी के चारों ओर खड़ा हो जाता है। देवी उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्र, आभरण, फल, फूल, वितरण करती है। देवी का भिक्षापत्र कभी रिक्त नहीं होता। आज किसी वस्तु का अभाव नहीं है। जो जिसकी इच्छा करता है, वह उसे मिल जाती है। दरिद्रों का चिरकाल का मनोरथ पूर्ण हो जाता है। आज उनके आनन्द की सीमा नहीं है। कोई अपने बहुमूल्य वस्त्रों को देखकर चकित होता है। कोई अपने अलंकारों को विस्मित दृष्टि से देखता है। दरिद्रों का आज आनन्द-दिवस है। उनके रोग, शोक, चिंता, भय, सन्देह सब दूर हो जाते हैं। सब लोग एकस्वर से हर्ष-ध्वनि करते हैं]

दरिद्रों का दल–भगवती अन्नपूर्णा की जय! माता कुमारी की जय! कमला की जय!

(इतने ही में शंखनाद होता है। भिक्षा-पात्र में कुछ नहीं रह जाता। देवी दरिद्रों के समूह को द्वार से बाहर करती है, फिर द्वार बन्द कर देती है। प्रार्थना-काल का घंटा बजता है और माता जी अधिकारिणी परिचारिकाओं के साथ आती है।)

माता जी–(देवी की ओर देखकर)–बहिन कमिला, आज तुमसे प्रार्थनाकाल का घंटा नियमित समय पर नहीं बजाया गया। इसलिए तुम्हें तीन दिन तक उपवास करना पड़ेगा।

देवी (अवनत मुख होकर)--माता जी जैसा आदेश करती हैं मैं वैसा ही करूँगी।

(माता जी आगे बढ़ती हैं और सिंहासन के पास जाकर प्रणाम करना ही चाहती है कि उन्हें जान पड़ा सिंहासन खाली है, देवी की प्रतिमा उसमें नहीं है। परिचारिकायें भी भय से स्तंभित हो जाती हैं। कुछ देर तक सब चुप रह जाती हैं। फिर जो मनमें आता है सब कहने लगती हैं।)

परिचारिकागण—देवी नहीं हैं!

भगवती हम लोगों को छोड़ कर चली गईं।

हाय हम कैसे रहेंगी!

मंदिर अपवित्र हो गया है।

यह किस के पाप का फल है?

यह हम लोगों का दुर्भाग्य है।

यह कैसी घटना है?

(देवी भी आगे बढ़ कर सिंहासन की ओर, जहाँ उनकी

प्रतिमा थी, निश्चल दृष्टि से देखती हैं। उस समय देवी का मुख अत्यन्त शांतियुक्त जान पड़ता है।)

माताजी—कमला, मैं जानती हूँ, तुम्हें इस समय बड़ी वेदना होती होगी। देवीकी प्रतिमाका रक्षा-भार तुम पर ही था। पर बहिन, तुम कुछ चिन्ता मत करो। कुछ भय नहीं है। यदि देवी की ऐसी ही इच्छा है तो हम लोग क्या कर सकती हैं! परन्तु मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ। क्या तुमने कुछ देखा है? कदाचित् तुमने कुछ देखा हो, कुछ सुना हो।

(देवी चुप रहती है।)

मुझे उत्तर दो। तुम कुछ कहती क्यों नहीं हो? तुम्हें हुआ क्या है? मुझे भी तुममें कुछ आज विचित्रता मालूम होती है। कभी-कभी तुम्हारे मुखसे एक प्रभा सी निकलती है। और यह क्या है? आज तुम्हारा वस्त्र कैसा है! वह हम लोगों के वस्त्र ऐसा नहीं है। मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हुआ है? तुम्हे देखकर इस समय कोई नहीं कह सकेगा कि तुम कमला हो। तुम्हारे वस्त्रों से यह कैसी आभा निकल रही है?

(देवी के परिधान को स्पर्श करती है।)

यह क्या है? इसे स्पर्श करते ही मेरा हाथ भी आलोकित हो उठता है।

(देवी का हाथ उठाकर देखती है। उसमें सुवर्ण का कंकण है।)

कमला, यह तो देवी का कंकरा है !

(क्रोध के आवेग में आकर वह देवी का परिधान बिलकुल अलग कर देती है और यह देखकर उसके आश्चर्य और क्रोध की सीमा नहीं रहती है कि देवी के सब अलंकार, उनका कौशेय वस्त्र भी, वह पहने हुए है। भय लज्जा और घृणा से माताजी, अधिकारिणी और परिचारिकायें कुछ देरतक निस्तब्ध हो जाती हैं, परस्पर एक दूसरी की ओर देखने लगती हैं। इसके बाद माता जी अपने हृदय के आवेग को, उसकी प्रबल उत्तेजना को, किसी प्रकार से रोक कर सब लोगों की निब्धता का सहसा भंग कर देती हैं।)

माता जी–भगवती यह क्या हुआ ?

परिचारिकागरा–इसने (कमला ने) प्रतिमा को नष्ट कर डाला है।

इसकी मति भ्रष्ट हो गई है।

आभरणों के लोभ से इसने ऐसा किया है ।

इसकी ऐसी नीच बुद्धि कैसे हुई ?

यह इसका उन्माद है।

यह कुछ भी नहीं बोलती है।

अब हम लोगों को यहाँ ठहरना उचित नहीं है। इसके साथ में रहने से हमें इसके दुष्कर्मों का फल सहना पड़ेगा। यह कभी संभव नहीं है कि देवी इसे दंड न दें। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि देवी की प्रचंड क्रोधाग्नि में पड़कर हम लोग भस्म

हो जावेंगी। चलो, सब भाग चलें।

(सब परिचारिकायें भय-भीत होकर भागने का उपक्रम करती हैं, पर माता जी सबको साहस देकर रोक लेती हैं।)

माता जी—मत जाओ, कोई भी मत जाओ। क्या पाप से डरकर हम लोग अपना स्थान त्याग दें ? जो कुछ भाग्य में होगा वह अवश्य होगा। आओ, हम लोग मिल कर प्रार्थना करें, जिस से देवी की क्रोधाग्नि शान्त हो।

(कामिनी) एक परिचारिका—माता जी, मैं विनय करती हूँ आप यहाँ मत ठहरें।

(भामिनी) दूसरी परिचारिका—हम लोगों को स्वामी जी के पास जाना चाहिए।

(दामिनी) तीसरी परिचारिका—वे इस का कुछ उपाय कर सकते हैं।

माता जी—बहिन, तुम्हारा परामर्श उचित है। चलो, हम लोग स्वामी जी के पास चलें। इसे भी साथ में ले जाना होगा। फिर स्वामी जी की जैसी आज्ञा होगी, वैसा किया जावेगा। देखें, भाग्य में क्या है !

कामिनी (देवी के पास जाकर)—दुष्टे तूने ऐसा दुष्कर्म क्यों किया ?

भामिनी (देवी के पास जाकर)—क्या तुझे थोड़ा भी भय नहीं हुआ ?

दामिनी (देवी के पास जाकर)—मैं तुझ से घृणा करती हूँ।

सुकेशी (चौथी परिचारिका)—हाय, बहिन कमला, तुम से यह कैसे हुआ ?

(देवी उसकी ओर स्नेह-दृष्टि से देखती हैं।)

कामिनी (सुकेशी से)—यह तुम्हारी ओर देख रही है। तुम इस की ओर मत देखो। इसे देखने में पाप है। यह तो तुम्हारी कभी सखी थी न ?

सुकेशी (निश्वास लेकर)—हाँ, यह मेरी सखी थी और अब भी है।

कामिनी (आश्चर्य से)—क्या अब भी इस पर तुम्हारा स्नेह है।

सुकेशी—कैसे कहूँ कि नहीं है।

कामिनी—बहिन, यद्यपि इसके पापों से मुझे घृणा है तो भी तुम्हारा स्नेह देख कर मुझे इस पर दया आती है। पर इसने, बहिन, ऐसा किया क्यों ?

सुकेशी—बहिन, भगवती की माया कौन समझ सकता है ! नहीं तो कहाँ मेरी सुशीला, धर्मपरायणा सखी और कहाँ यह दुष्कर्म !

दामिनी (भामिनी से)—बहिन, मुझे तो पहले भी इसके चरित्र पर संदेह होता था।

भामिनी—कैसे ? तुमने तो मुझ से कभी कुछ नहीं कहा।

दामिनी—बहिन, कैसे कहूँ, वह केवल मन का सन्देह था। पर आज वह दृढ़ होगया, इस से कहती हूँ। तुम समझ सकती हो, जिस का चरित्र अच्छा है, उस की ऐसी पाप-

बुद्धि कैसे हो सकती है ?

भामिनी—पर तुम्हें किस प्रकार का सन्देह हुआ था ?

दामिनी—यह एकान्त में कभी-कभी कुमारसिंह से मिलती थी।

भामिनी—छिः, यह पाप कथा मत कहो।

(स्वामी जी व्यग्रता से आते हैं।)

माता जी—भगवन्, मैं नहीं कह सकती हूँ कि इस समय हम लोगों को कैसी वेदना हो रही है। आप ही कुछ उपाय बता सकते हैं।

स्वामी जी—वत्से, प्रार्थना करो; कमला के पापों के लिए देवी से प्रार्थना करो। पर मैं कमला से कुछ पूछना चाहता हूँ। (देवी की ओर देख कर) कमला, मेरी ओर देखो, मुझे उत्तर दो।

(देवी अवनत-मुख होकर पृथ्वी की ओर देखती है।)

कमला, मैं तुम्हें देवी के नाम से पुकारता हूँ, मुझे उत्तर दो।

(देवी फिर भी स्थिर रहती है।)

कमला, तुम, मेरी नहीं, देवी की आज्ञा भंग करती हो। तुम्हें विदित नहीं है कि देवी की क्रोधाग्नि में कैसा उत्ताप है ? मैं कहता हूँ, तुम यदि मेरी ओर नहीं देखोगी तो तुम उस क्रोधाग्नि में पड़ कर दग्ध हो जाओगी।

माता जी—यह कुछ नहीं सुनती है।

कामिनी—यह सुनना नहीं चाहती है।

भामिनी—इसे कुछ भय नहीं है।

दामिनी—निर्लज्ज हो जाने से यह निर्भय हो गई है।

स्वामी जी – मुझे अब थोड़ा भी संशय नहीं है। मैंने जान लिया, इसे किस का गर्व है। जब पाप प्रबल हो जाता है, तब उस से एक प्रकार का दर्प होता है। कमला की भी ऐसी ही दशा हो गई है।

(माता जी की ओर देख कर)

वत्से, मैं इसे तुम्हारे पास छोड़ जाता हूँ। तुम इसे अब कारागार में ले जाओ, जहाँ पापियों को दण्ड दिया जाता है। निर्दय होकर इसका अहंकार चूर्ण करो। मैं अब जाता हूँ, तुम भी इसे ले जाओ।

[परिचारिकायें देवी को ले जाती हैं। केवल सुकेशी नहीं जाती है। वह एक बार कमला की ओर सजल-दृष्टि से देख कर उद्यान में चली जाती है। सब कारागार में प्रवेश करती है। कारागार में खूब अन्धकार था, पर इन लोगों के जाते ही वहां प्रकाश हो जाता है! इस के बाद एक विचित्र गाना शुरू होता है। सब विस्मय-विमुग्ध होकर सुनने लगती हैं। न जाने कौन करुण स्वर से भगवती अन्नपूर्णा की स्तुति कर रहा है। जान पड़ता है कोई गन्धर्व स्वर्गलोक से आकर संसार के कल्याण के लिये देवी से प्रार्थना कर रहा है। ऐसा मधुर स्वर, ऐसा पवित्र संगीत, इस मर्त्यलोक में नहीं हो सकता। क्रमशः स्वर तीव्र होने लगता है और वायुमण्डल में उपस्थित होकर वह सम्पूर्ण मन्दिर को कम्पित कर देता है। उस में वेदना का भाव

नहीं है। एक-एक स्वर से उत्साह प्रगट होता है। जान पड़ता है कि मर्त्यलोक की दुर्बलता दूर कर वह उस में नवीन-शक्ति का संचार कर देना चाहता है। अन्त में स्वर अत्यन्त तीव्र हो जाता है। उसमें से एक ज्वाला-सी निकलने लगती है। उसे कोई नहीं सह सकती। सब घबड़ाने ल हैं और देवी को चारों ओर से घेर लेती हैं। फिर गान बन्द हो जाता है, मर्त्यलोक के पापों को दग्ध कर उसकी ज्वाला शान्त हो जाती है। क्षणभर के बाद एक नवीन गान आरंभ होता है। उस में अनेक स्वर सुनाई पड़ते हैं। सब निस्तब्ध होकर सुनती हैं। थोड़ी देर में वह भी वायु मंडल में लीन हो जाता है। फिर सहसा देवी के ऊपर पुष्पों की वर्षा होने लगती है। थोड़ी देर तक सब भय से स्तंभित हो जाती हैं। पर अन्त में उस के हृदय का द्वार खुल जाता है और सब आनंद में मग्न हो जाती हैं। देवी को लेकर सब बाहर आती हैं। पर पुष्पों की वर्षा होती ही रहती है। सब लोग देवी की वन्दना करने लगती हैं। फिर परस्पर एक दूसरी को आलिंगन करती हैं। उनके सब घृणा-भाव दूर होते हैं। सब अपना हर्ष प्रकट करने लगती हैं]

परिचारिकागण—कमला पवित्र है।

इसके पवित्र शरीर में देवी निवास कर रही हैं।

इसके शरीर से एक तेजपूर्ण आभा निकल रही है।

मन्दिर का अन्धकार दूर हो गया।

कमला से दिव्य आलोक पाकर हम लोगों में प्रेमकी नवीन जागृति हुई है ।

माता जी—आओ, हम लोग कमला से अपने पापों के लिए क्षमा माँगें ।

दामिनी—हाय, मैंने इसके पवित्र चरित्र पर संदेह किया था ।

भामिनी—मैं इसे पापिनी समझती थी ।

कामिनी—आओ, हम लोग कमला की वन्दना करें ।

माता जी—आओ, आओ । सबको क्षमा मिलेगी । आज प्रेम का विजयदिवस है ।

(इतने में द्वार पर आघात होता है । देवी जो अब तक निश्चेष्ट-सी हो गई थीं, चैतन्य हुई । वे तुरन्त ही जाकर द्वार खोल देती हैं । तीन दरिद्र आते हैं । देवी उनका स्वागत करती हैं । और, फिर जैसे कुछ हुआ ही न हो, वे नियमित रीति पर कमला का सब काम करती हैं) ।

——

तीसरा अंक

(अन्नपूर्णा के मन्दिरका दृश्य वैसा ही है जैसा प्रथम अंक में था। सिंहासन पर देवीकी प्रतिमा स्थित है। कमला का अवगुण्ठन और वस्त्र सिंहासन के नीचे पड़ा है। देवी अपने वस्त्र और अलंकारों से युक्त है। मन्दिर का द्वार खुला हुआ है। प्रदीप जल रहा है। भिक्षा-पात्र में दरिद्रों को देने के लिए अन्न और वस्त्र रक्खे हुए हैं। सब कुछ वैसा ही है, जैसा कमला कुमारसिंह के साथ जाते समय छोड़ गई थी। शिशिर का उषःकाल है। प्रार्थना-काल के लिए घंटा बज रहा है, यद्यपि उसका बजाने वाला कोई नहीं है। थोड़ी देर में मंदिर निस्तब्ध हो जाता है और कमला प्रवेश करती है। उस के शरीर पर मैले और फटे हुए वस्त्र हैं। उसके केश श्वेत हो गये हैं, शरीर शिथिल पड़ गया है, नेत्रों में ज्योति नहीं है, मुखमें कांति नहीं है। उसे देखने से ज्ञान पड़ता है कि उसके

जीवन की प्रदीप-शिखा मलीन हो गई है, अब उसमें थोड़ा ही प्रकाश रह गया है। वह क्षणभर ठहर जाती है, फिर कुछ शंका, छ भय से आगे बढ़ती है। भय भीत मृगी की भाँति वह चकित होकर चारों ओर देखती है। फिर मंदिर को जन शून्य देख कर वह चुपचाप आती है, पर ज्यों ही उसकी दृष्टि देवी की प्रतिमा पर पड़ती है त्यों ही मुख से—हृदय से—वेदना का एक चीत्कार निकलता है। उसके चीत्कार में, कौन कह सकता है, दुख, आशा और हर्ष का कितना अंश है। तुरन्त ही वह दौड़कर देवी के चरणों पर गिर जाती है)।

मला—देवी मैं आई हूँ। मुझे अलग मत करो, पद दलित भले ही करो। संसार में अब मेरा कुछ नहीं है, केवल तुम हो। तुम मुझे त्याग मत करो। मुझे आशा थी, मैं तुम्हें एक बार भली-भाँति देख लूँगी। पर आज नेत्रों में इतनी शक्ति नहीं है, तुम्हारी करुणा-मूर्ति ठीक नहीं देख सकती हूँ। तुम्हें प्रणाम करने के लिए, तुम्हारे चरणों को स्पर्श करने के लिए, हाथ बढ़ाना चाहती हूँ। पर हाथ शिथिल हो गये हैं, बढ़ते नहीं हैं। मैं प्रार्थना करनी भी भूल गई हूँ, तुम से कुछ नहीं कह सकती हूँ। रोकर भी अपने हृदय की वेदना प्रकट नहीं कर सकती। अब नेत्रों में अश्रु-जल नहीं है। मैं आज मरने के लिए आई हूँ। अपने अंतिम-काल में तुम्हें एक बार देखना चाहती हूँ। तुम्हारे इन चरणों के पास अपना प्राण देना चाहती हूँ। पर यह भी असंभव है। जब तक उन्हें

मालूम नहीं है कि मैं यहाँ आई हूँ, तब तक मैं तुम्हारे पास खड़ी रह सकती हूँ। जानते ही वे मुझे यहाँ पलभर भी ठहरने नहीं देंगे, तुरन्त ही मन्दिर से बाहर कर देंगे। मुझ पर उन्हें घृणा करना उचित है। संसार मुझ से घृणा कर रहा है, वे क्यों नहीं करेंगे? पापिनी पर केवल तुम्हारी ही दया-दृष्टि हो सकती है। और मुझे विश्वास है सब कुछ जान कर भी तुम मुझ पर अवश्य दया करोगी।

(चारों ओर देखकर)

पर मैं अकेली क्यों हूँ? यह मन्दिर शून्य कैसा है? मेरे स्थान पर कौन दासी काम कर रही है? वह कहाँ गई है? प्रदीप जल रहा है। प्रार्थना-काल का घंटा बज गया है। सूर्योदय भी हो गया है, पर अबतक कोई परिचारिका नहीं आई! (इतने में देखती है, उसके वस्त्र अवगुण्ठन सिंहासन के नीचे रक्खे हुए हैं)

यह क्या है? मेरी दृष्टि इतनी मलिन हो गई है कि मैं कुछ भी नहीं पहचान सकती हूँ। यह तो मेरा ही वस्त्र है, मेरा ही अवगुण्ठन है, आज से बीस वर्ष पहले जिसे मैं यहाँ छोड़ गई थी।

(उठाकर पहन लेती है।)

देवि, क्षमा करो यदि मैं तुम्हारे मन्दिर के इस पवित्र परिधान को अपने कलंकित देह के स्पर्शसे कलुषित कर रही हूँ। मेरे इन फटे हुए वस्त्रों से अंग ढकते नहीं हैं। और यह शीत-

काल भी है। इससे मैं अपनी इच्छा नहीं रोक सकती हूँ। देवि क्या तुमने ही—क्योंकि मैं तुम्हें ही सौंप गई थी—इसे मेरे लिये आज तक रक्खा था? क्या अब तुम ही इसे मुझे देरही हो?

(बाहर पद-शब्द सुनाई पड़ता है)

यह किसका पद-शब्द है? जान पड़ता है मेरी बहिनें परिचारिकायें आ रही हैं। मैं यहाँ ठहर नहीं सकती, उन्हें अपना मुख नहीं दिखा सकती। देवि, दया करो।

(ज्योंही उठकर जाना चाहती है, त्यों ही मूर्छित होकर गिर पड़ती है। थोड़ी ही देर में माता जी अधिकारिणी परिचारिकाओं को साथ लेकर आती हैं। सहसा उन लोगों की दृष्टि कमला की मूर्छित देह पर पड़ती है। तुरन्त ही सब दौड़कर उससे पास जाती हैं।)

माताजी—(कमला के देह को स्पर्श कर) कमला ने, जान पड़ता है, प्राण त्याग दिये।

कामिनी—भगवती ने दिया था और वे ही उसे ले गईं।

भामिनी—विमान आ गया और वह अप्सराओं के साथ स्वर्ग चली गई।

सुकेशी—(उसे गोद में लेकर) नहीं, नहीं, यह मरी नहीं है। देखो, यह अब भी निश्वास ले रही है।

माताजी—पर उसका मुख कितना कांति-हीन हो गया है, वह कितनी दुर्बल हो गई है।

दामिनी—एक ही रात्रि में इसकी ऐसी दशा हो गई है।

कामिनी—कल इसे खूब कष्ट हुआ होगा। इससे ही इसका शरीर इतना क्षीण हो गया।

सुकेशी—इसमें सन्देह नहीं है कल इसे बड़ी वेदना थी। मैंने देखा, यह रोती भी थी। मैंने इससे पूछा पर इसने कुछ कहा नहीं। तब मैंने कहा मैं तुम्हारा कामकाज कर दूँगी, तुम जाकर विश्राम करो। किन्तु इसने मेरी बातों का कुछ ख्याल नहीं किया। कहने लगी, मैं आज एक पवित्रात्मा की प्रतीक्षा कर रही हूँ। जान पड़ता है इसने कल रात भर विश्राम नहीं किया।

माताजी—यह कल किसी पवित्रात्मा की प्रतीक्षा करती थी। वह कौन हो सकती है ?

(इतने में उनकी दृष्टि सिंहासन की ओर जाती है। उस पर देवी की प्रतिमा देख कर वे हर्ष से चिल्ला उठती हैं। सब परिचारिकायें भी उधर देखने लगती हैं। देवी का दर्शन कर सब के आनन्द की सीमा नहीं रहती।)

कामिनी—वह देखो। देवी आ गई। उनके शरीर में सब अलंकार हैं।

भामिनी—मुख में कैसा माधुर्य है ! नेत्रों में कैसी ज्योति है !

दामिनी—जान पड़ता है कमला ही की प्रार्थना से देवी मर्त्य-लोक में आई हैं।

सुकेशी—(भय से) देखो, देखो, कमला की ओर देखो। वह

कैसी हो रही है।

(सब कौशेय वस्त्र की शय्या बनाकर कमला को देवी के पास रखती हैं।)

माता जी—इसका यह परिधान अवगुण्ठन भी अलग कर दो। इससे श्वास निरुद्ध होता है।

(सुकेशी वैसा ही करती है और सबको यह देखकर आश्चर्य होता है कि वह मैली और फटी हुई साड़ी पहने हुए है।)

कामिनी—माता जी तुमने क्या कभी इसको इतनी मैली और फटी हुई साड़ी में देखा था?

भामिनी—और बहिन, यह इसके पैरों में कीचड़ कितना है!

दामिनी—मैं नहीं जानती थी इसके केश इतने श्वेत हो गये हैं!

माताजी—हम सब कुछ नहीं समझ सकती हैं। यह तपस्विनी है। कदाचित् यह कोई कठोर तपस्या कर रही थी।

सुकेशी (हर्ष से)—इसे सुधि आ रही है। देखो, यह अपने नेत्र खोल रही है।

(धीरे-धीरे कमला चैतन्य होकर चारों ओर देखती है।)

कमला (मानो कोई स्वप्न देख रही हो)—मेरा

शिशु—हाय! जब उसकी क्षुधा से मृत्यु हो गई! तुम हँस क्यों रही हो?

माता जी—हम लोग हँस नहीं रहीं हैं। किसी प्रकार से तुम्हारी मूर्छा दूर होती देख प्रसन्न हो रही हैं।

कमला—मुझे मूर्छा आ गई थी ! (कुछ स्मरण कर) हाँ, मुझे अब स्मरण आया। मैं अत्यन्त कष्ट सह कर मन्दिर में आई हूँ। मेरी ओर ऐसे भय से मत देखो। मैं अब कलंक का पात्र बनकर नहीं रहूँगी। थोड़ी ही देर में मेरा यह कलंकित जीवन समाप्त हो जायगा। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा हो कर लेना। कोई नहीं जान सकेगा। देखती हूँ, तुम्हारे नेत्रों में जल भर आया है। मैं समझती हूँ तुम सब मुझे अब तक नहीं पहचान सकी हो।

माताजी (कमला के मस्तक को छू कर)—पर हम लोग तुम्हें जानती हैं भली भांति पहचानती हैं कि तुम कैसी पवित्रात्मा हो।

कमला—मुझे स्पर्श मत करो। मैं दुराचारिणी हूँ।

दामिनी (चरणों को स्पर्श कर)—मैं तुम्हारे चरणों को स्पर्श कर पवित्र होती हूँ।

कमला—तुम यह क्या करती हो ? तुम नहीं जानती हो, मैंने कैसे पाप किये हैं।

कामिनी—तुम स्वर्ग से आ रही हो। मैं भी तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

कमला—तुम्हें क्या हुआ है ? तुम यह सब क्या कह रही हो ? मैं नहीं समझती हूँ। (सुकेशी की ओर देखकर) तुम क्या मेरी बहिन सुकेशी हो ?

सुकेशी—हाँ, बहिन कमला, मैं सुकेशी ही हूँ। जिस पर तुम्हारा

इतना स्नेह है।

कमला—सुकेशी, तुम्हें स्मरण होगा, आज से वीस वर्ष पहले मैंने तुमसे कहा था, मैं सुखी नहीं हूँ।

सुकेशी—हाँ, उसके दूसरे दिन तुम्हें ही भगवती अपना कार्य-भार सौंप गई।

कमला—तुम्हारी बातों से मुझे आश्चर्य होता है। मैं कुछ समझ नहीं सकती हूँ। मेरी स्मरण-शक्ति निर्बल हो गई है। जान पड़ता है मैं स्वप्न देख रही हूँ। नहीं, नहीं, यह स्वप्न नहीं है। तुम सब भूलती हो, मुझे पहचानती नहीं हो। देखो, मैं पापिनी कमला हूँ।

माताजी—पर हम सब तो जानती हैं। तुम कमला हो, तपस्विनी, सदाचारिणी, पुण्यशीला हो।

कमला—माता जी, तुम भी ऐसा कहती हो। मुझे स्मरण है, तुम्हें पाप-पुण्य का बड़ा विचार था। मुझे कुछ हो गया है अथवा तुम सब परिहास कर रही हो। पर मैं देखती हूँ, तुम सब गम्भीर हो। यह देखो, यहाँ वहिन कामिनी खड़ी हैं।

कामिनी—हाँ, वहिन मैं कामिनी ही हूँ।

कमला—और तुम वहिन भामिनी हो?

भामिनी—हाँ वहिन।

कमला—और यह वहिन दामिनी है। यह भी मेरी ओर चिन्तित-दृष्टि से देख रही है। कोई भी मुझ से घृणा नहीं

करती। क्या तुम देखती नहीं हो मेरी कैसी दशा हो गई है ?

माताजी—यह तुम्हारी कठोर तपस्या का फल है।

कमला—नहीं, नहीं माता जी ! मैं आज बीस वर्ष पहले कुमार के साथ मन्दिर छोड़ कर चली गई थी। तुम विस्मित हो रही हो ? पर यह सच है। उस ने कुछ महीनों के बाद मुझ से प्रेम करना छोड़ दिया। जब उस के व्यवहार से मैं निराश हो गई—जब मुझे जान पड़ा कि उस का प्रेम मुझे कुपथ में ले जाने के लिए था, तब मैंने लज्जा छोड़ दी, संकोच त्याग दिया और विवेक-बुद्धि को सदा के लिए विदा दे दी। फिर अनुचित उचित का मैंने विचार नहीं किया। विपथ को ही मैंने अपने लिए श्रेयस्कर मान लिया। निर्भय होकर मैं उस में भ्रमण करने लगी। अनुताप से मेरा हृदय फटता था, पर मैं कुछ नहीं कर सकती थी। सच तो यह है, मैंने पाप को भी पतित कर डाला। अब मृत्यु-काल में देवी को एक बार देखने की इच्छा से मैं यहाँ आई हूँ।

माताजी (कमला के मुख पर हाथ रखकर)—वत्से, तुम कुछ मत कहो। यह तुम्हारी कथा नहीं है। यह मर्त्य-लोक की पाथ कथा है। तुम निर्दोष हो। तुम तपस्विनी हो। तुम्हारा जीवन पवित्र है।

कमला—तो तुम्हें विश्वास नहीं है कि मैंने मन्दिर छोड़ने के बाद अनेक पाप किये हैं ?

माताजी—तुमने क्षणभर के लिए भी मन्दिर नहीं छोड़ा है। तुम आज बीस वर्षों से इस मन्दिर में परिचारिका होकर रहती हो। मैंने तुम्हें उपासना और परिचर्या के कामों में सर्वदा संलग्न देखा है। मैं कह सकती हूँ, तुम्हारे समान पवित्र जीवन किसी का नहीं है। तुम सर्वथा निष्पाप हो। तुम मन्दिर के बाहर कभी नहीं गई हो।

कमला—मैं कभी मन्दिर के बाहर नहीं गई थी ! मैं कुछ सोच नहीं सकती हूँ। देखो, मैं मृत्यु-शय्या पर पड़ी हूँ। यह मेरा अन्तिम काल है। मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ, तुम मुझे सच कह दो। क्या तुम जान कर भी दयाभाव से ऐसा कहती हो, जिस से मुझे मृत्यु काल में कुछ कष्ट न हो ? अथवा क्या तुम मुझे ऐसी दशा में देख कर क्षमा कर रही हो ?

माताजी—वत्से, मैं तुम्हें क्या क्षमा करूँगी। तुम स्वयं निर्दोष हो। मैं सच कहती हूँ, तुमने कोई पाप नहीं किया है। मैंने तुमको सदा मन्दिर में ही देखा है।

कमला—यह कैसे हो सकता है ? मेरा स्थान किसी और ने ले लिया था क्या ?

माता जी—किसी ने नहीं। तुम स्वयं यहाँ थीं और अपना सब काम करती थीं।

कमला—मैं यहाँ थी ? प्रतिदिन तुम्हारे साथ रहती थी ? तुम मुझे देखती थीं, स्पर्श करती थीं ? माता, जी क्या सचमुच तुम मुझे प्रतिदिन देखती थीं ?

माताजी—वत्से, विश्वास करो । हम तुम्हें सदा यहाँ देखती थीं।

कमला—मैं कुछ नहीं जानत। हूँ कुछ नहीं समझ सकती हूँ। (देवी की ओर देखकर) देवी, मैं तुम से पूछती हूँ, यह कैसे हुआ ? क्या तुमने जान लिया, मुझे कितनी वेदना थी ? मैं समझती थी, मैं कुछ नहीं समझती थी !–मैं अपने कष्ट के समय कहा करती थी कि यदि तुम जान लोगी कि मुझे कितना कष्ट हो रहा है तो तुम अवश्य ही क्षमा कर दोगी। किसी समय में लोग पापियों की वेदनाओं से सहानुभूति प्रकट नहीं करते थे, उनसे घृणा करते थे, उन्हें दण्ड देते थे। किन्तु आज प्रेम का विजय-दिवस है। सर्वत्र दयाभाव है, सर्वत्र शांति है। माताजी, मेरी बहिन-परिचारिकाओ, मैं कहती हूँ—पर अब मेरी बोलने की शक्ति क्षीण होती जाती है। मेरी दृष्टि भी मलिन हो गई है। कण्ठ अवरुद्ध हो रहा है। मैं अब जा रही हूँ। इस संसार में मैं जब तक थी तब तक नहीं जान सकी कि यहाँ इतना घृणा का भाव मनुष्यों में क्यों है ? जहाँ जाती हूँ वहाँ देखूँगी कि प्रेम और दया का इतना आधिक्य क्यों है। मैं जाती—आती हूँ—मा !

(कमला की मृत्यु।)

मांताजी—वह अनन्त निद्रा में है।

सुकेशी—वह देवी की गोद में विश्राम ले रही है।

॥ समाप्त ॥